

## ज़हर-मोहरा

इस कहानी के साथ पहली दिक्कत यह है कि उसकी पूर्व भूमिका कहां खत्म होती है और कहां से कहानी शुरू होती है, यह तय करना शायद आपके लिए मुश्किल हो। एक नज़रिए से आप इसे विज्ञान कहानी भी कह सकते हैं क्योंकि संभावनाओं की पड़ताल का दूसरा नाम ही तो विज्ञान है। संभव है कि आज की यह अजीबोगरीब संभावना कल रोज़मर्रा की हकीकत में तब्दील हो जाएं। यूं भी यह कहानी वास्तविकता और व्यक्तिगत तजुबों से बहुत दूर नहीं है। यह भी शायद इत्तफ़ाक नहीं है कि इसे लिखते समय मैं स्वयं एक गंभीर बीमारी से ग्रस्त हूँ जिसका सीधा संबंध मस्तिष्क से है। दो दिन पहले जब अचानक इस पर हमला हुआ तो मैं भरभराकर ज़मीन पर गिर पड़ा। कहीं कोई तकलीफ़ या जिस्मानी चोट नहीं, सिर्फ़ एक अहसास कि जो कुछ हमारे इर्दगिर्द है उस पर अब मेरा वश नहीं रहा। संयोगकी बात है कि मेरे स्मृति के गहनतम इलाकों में भी कहीं कोई हलचल या स्मृतिदोष नहीं हुआ। सब कुछ उस पानी जितना ही साफ़ और पारदर्शी था, जिसमें दो दिन पहले मैंने काली मुर्गाबी की एक तस्वीर खींची थी और जिसमें पक्षी और उसकी परछाई के बीच के फर्क को समझना मुश्किल हुआ जा रहा था। मुझे यहां तक याद है कि हमले से कुछ क्षण पहले मैंने बर्तन में से शोरबा निकालकर रकाबी में डाला था और उस वक्त लापरवाही की वजह से थोड़ा सा शोरबा बाहर छलक गया था। मैं जब गिरा तो मेरी भाभी बार बार ज़िद करती रही कि मैं ठंडी ज़मीन पर थोड़ा सा खिसक कर रजाई पर आ जाऊँ, लेकिन उस रजाई तक पहुँचना उस वक्त किसी पहाड़ की तरह लगने लगा था। मेरी आंखों के सामने दो हाथ थे, जो गोया कि मेरे भीतर जाने की कोशिश कर रहे थे। वे किसके हाथ थे? निश्चय ही वे मेरे नहीं किसी और के थे, लेकिन डॉक्टर ने तसल्ली दी थी कि वहां उस वक्त कोई और नहीं। कोई नहीं था तो फिर वहां हमारे अतिरिक्त उस ठंडी ज़मीन पर मेरे ही करीब, या कि मेरे भीतर वह कौन था, जिसे अपनी नज़रों को भीतर की तरफ उलटाकर मैं किसी परछाई की तरह देख सकता था। वह शख्स मेरे भीतर क्यों जाना चाह रहा था? मैंने इस वाकए का जिक्र अभी तक किसी से नहीं किया है क्योंकि वर्तमान हालत में किसी के लिए भी मुझे विक्षिप्त या खिसका हुआ साबित करना बेहद आसान होगा। लेकिन मुझे पूरा यकीन है कि मेरे ज़ेहन में उस वक्त भी कोई सिलवट, खम या स्मृति भ्रंश रहा था। हां हादसे की वजह से दिमाग के दाहिनी ओर कुछ बेतरतीबी ज़रूर आ गयी है, जिसकी वजह से कुछ चीज़ें अपनी सही वर्तनी में याद नहीं आती और कुछ चीज़ें बेवजह, असमय याद आने लगती हैं। कुछ अहसास वक्त का लिहाज किए बगैर बेवक्त जागते और करवट बदलते हैं। मेरे लिए अकल्पनीय है कि इस अपाहिज एवं क्षत विक्षत स्थिति में भी कुछ लोग इस बचे-खुचे शरीर पर अपना हक जमाना चाहते हैं। पता नहीं इस वक्त, इस बेतरह बाधित ज़िंदगी से उन्हें क्या चाहिए। शायद यह उनके भीतर की नकारात्मकता है जिसे वे

मेरे भीतर देखना चाहते हैं, किसी हारे हुए खिलाड़ी की तरह। लेकिन इसके लिए फिर एक बार उन्हें निराश होना पड़ेगा। मैं बेवजह परेशान नहीं हूँ, हालाँकि मेरे सामने अतिरिक्त रूप से उत्साहित होने का भी कोई खास आधार नहीं है। जिंदा रहने के लिए अब मुझे बहुत सारी जगह नहीं चाहिए। लेकिन जो थोड़ी सी सीमित ज़मीन नितांत मेरी अपनी है उसके लिए मैं अपनी जान पर खेल जाऊँगा। देखा जाए तो यह बात भी अपने आप में बेमानी है क्योंकि जान पर तो मैं पहले ही खेल चुका हूँ। तो फिर बच रही इस आखिरी दो मुट्टी ज़मीन को हथियाने वालों का मुकाबला मैं कैसे और क्योंकर कर पाऊँगा? मुझे नहीं मालूम। लेकिन फिर भी मेरी हार, जिसमें कहीं आप सब लोगों की हार भी शामिल होगी, उन्हें इतनी आसानी से नसीब नहीं होगी।

उर्दू के शायर कतील शिफाई ने एक शेर लिखा था जो मुझे बार-बार याद आता है। इसे कहने में भी शायद अपने आपको बड़प्पन से देखने का कोई भाव रहा होगा जो नहीं होना चाहिए। लेकिन आप हो सके तो उसके बचे खुचे बड़प्पन से काटकर इसे सपाट ढंग से पढ़कर देखें।

“शम्मा जिस आग में जलती है नुमाइश के लिए, हम उसी आग में गुमनाम से जल जाते हैं!”

इस शेर से आगे जो कुछ कहा जा रहा है वह कहानी की शुरुआत है। लेकिन आप मानेंगे कि न चाहने के बावजूद कहानी तो पहले ही शुरू हो चुकी है — लेखक

अपने खतरों के बारे में पूरी तरह वाकिफ होने के बावजूद मैंने सोचा था कि जो कुछ मेरे साथ अब तक हो चुका है, वह एक तरह से अपने वक्त की आखिरी सीमा है, जिसके आगे कुछ भी बदतर हो सकता अब संभव नहीं है। मैंने पहले सोचा था कि वे मेरी जान के पीछे पड़े हत्यारे किस्म के शख्स हैं जिनका सबसे बड़ा मकसद मेरी जान लेने से हल हो जाएगा। लेकिन यह मेरी बहुत बड़ी खामखयाली थी। मेरे मरने से सारा किस्सा ही समाप्त हो जाता और वे किसी भी हालत में किस्से को समाप्त नहीं करना चाहते थे। मुझे लेकर उनके लंबे स्वार्थ थे और किसी टटपूँजिए किशतकार की तरह वे ब्याज की रकम के मजे उठाते हुए भी मूल कर्ज को ज्यूँ-का-त्यों बरकरार रखना चाहते थे। उनके एक चेहरे के साथ उनके दो-चार घटिया पिछलग्गू थे, जो शायद मुझपर नज़र रखने की तनख्वाह पाते थे। लेकिन मेरी जान ले लेने से ज्यादा उनकी दिलचस्पी मुझपर निगरानी रखने में थी। वे चाहते थे कि अपने दिमाग के सबसे बेशकीमती अहसास मैं उनके कदमों में बिखेर दूँ। वे जानना चाहते थे कि मेरे भीतर की वह आर्द्रता, वह कशिश किसके लिए है, मैं किस-किस के पक्ष में और किसके खिलाफ खड़ा हूँ। वे बरबस छलका जाने वाली आंखों के आंसुओं की शिनाखा पर उसे जलील करना चाहते थे। उनकी दिक्कत यह भी थी कि वे मेरे कहे हुए पर यकीन नहीं कर सकते थे। अगर मैं अपनी मर्जी से कह देता कि मैं फलां को चाहता या उस पर यकीन करता हूँ तो वे इस बात को कोई महत्व नहीं देते। उन्हें मेरे कहे का सबूत मेरे खून की प्लेटलेट काउंट या ई एस आर की संख्या से चाहिए था। वे मेरे खून में भी अपने मुताबिक अच्छाइयाँ और बुराइयाँ चाहते थे। वे चाहते थे कि मेरे भीतर ही हर सोच सिर्फ इनके कदमों की मोहताज बनकर रह जाए। इसके लिए उनके दिमाग में मुझे लेकर विस्तृत योजनाएं और मंसूबे थे, जिनकी थाह पा सकना मेरे लिए सर्वथा असंभव था।

मेरे लिए तय कर पाना कठिन है कि मेरे दिमाग पर अचानक जो झटका लगा था, वह उन्हीं की मेहरबानियों का नतीजा था, या कि उन्होंने महज़ मुझे एक उपयुक्त पात्र पाकर इस झटके के बाद मेरे जिस्म पर काबू करने का फैसला कर लिया था। उनकी यह हरकत कुछ हद तक शमशानों में भटक रहे काले लबादों वाले अहेरियों की तरह थी, जो किसी ताजा लाश के शरीर में प्रवेश कर उससे मन चाही शक्ति बटोरने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। फर्क इतना था कि वे किसी तांत्रिक के मंत्र-यंत्रों की जगह दुनिया के सबसे नफीस साधनों से लैस थे और मानवीय मस्तिष्क की हर छोटी-बड़ी बारीकियों का उन्हें पूरा ज्ञान

था।

आपको यह बात अजीब लग सकती है, लेकिन जिस वक्त मुझे दिमागी झटका लगा, उस वक्त मैं पूरे होशो-हवास में था, वर्ना शायद मुझे उनकी मौजूदगी का अहसास तक न होता। बल्कि कहना चाहिए कि झटके से चारों-कोने चित्त गिरने के बावजूद मेरी चेतना अपने पूरे निखार पर थी। डॉक्टर का कहना है कि यह किस्सा सौ में से एकाध मरीज के साथ ही होता है, वर्ना अधिकांश मरीज एक झटके के साथ बेहोश हो जाते हैं और फिर बाद में जब धीरे-धीरे उनकी चेतना लौटती है तो उनके किसी अंग को फालिज या अधरंग ग्रस्त हो चुका होता है, या फिर कोई हिस्सा लकवे की गिरफ्त में होता है।

बहुत पहले किसी किताब में मैंने पढ़ा था कि कोई व्यक्ति जब मरने लगता है तो मृत्यु से पहले के थोड़े से वक्रे में उसे वे सारी चीजें भी दिखाई देने लगती हैं जो किसी सामान्य आदमी को नंगी आंखों से नज़र नहीं आती। कुछ ऐसा ही किस्सा मेरे साथ भी हुआ। अपने दिमाग पर लगे झटके के उन आखिरी क्षणों में भी मैंने देख लिया कि कमरे में मेरे, मेरे भाई और उस डॉक्टर के अलावा कोई और भी है जो मेरे बेहद करीब, मेरे जिस्म से सटकर खड़ा, मेरे जिस्म से एकात्म होने की कोशिश कर रहा है। उस शख्स ने बदरंग पोशाक पहनी हुई थी और उसका चेहरा इतना अस्पष्ट था, जैसे सियापा करने वालों की जमात में कोई अजनबी शरीक हो गया हो। बीच-बीच में वह किसी घुसपैठिए की तरह बेवजह मुझसे सटने का प्रयास करता, गोया कि मेरे शरीर की आड़ में आकर वह अपने-आपको छिपाने में सफल हो जाएगा।

उस एक क्षणांश में मुझे एक बार लगा था कि अर्द्ध जागृत अवस्था में कहीं मैं ऐसे अहसासों को गढ़ने की कोशिश तो नहीं कर रहा, जो वास्तव में वहां मौजूद नहीं हैं। लेकिन उसका वहां होना किसी प्रमाण की तरह लगभग तय था। जब डॉक्टर की दवा ने मेरे जिस्म पर काम करना आरंभ किया और अपने शरीर पर होने वाले परिवर्तनों का अहसास मुझे होने लगा, तब भी वह वहीं था। पता नहीं क्यों, अपनी बदरंग पोशाक के भीतर वह किसी ठोस वजन की जगह किसी बहने वाले द्रव का सा प्रतीत हो रहा था। एक ऐसा द्रव जो मेरे करीब आकर किसी गाढ़े बहने वाले तेजाब या कि काले कड़वे धुंए की तरह दोनों पुतलियों को फैलाकर मेरे भीतर उतरने का मौका तलाश रहा था। उसकी मौजूदगी से बेतरह घबरा कर एक बार मैंने डॉक्टर का ध्यान उस ओर खींचने की कोशिश की थी, लेकिन जाहिर है कि डॉक्टर को कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था और मेरी हथेली को अपने हाथ में भींचते हुए उन्होंने सांत्वना वाले अंदाज़ में मुझे तसल्ली देते हुए कहा था कि “जस्ट रिलैक्स! आप अब अपनी सांस को ढीला छोड़ दीजिए!”

मुझे याद है कि डॉक्टर के ठंडे और औपचारिक स्पर्शों के समानांतर मेरे भाई ने ढाढस बंधाने की कोशिश में मेरी हथेली को अपने हाथ में थामा हुआ था। शायद उन्हें अब तक पूरे तौर पर यकीन नहीं हुआ था कि मेरे सिर पर खड़ा खतरा पूरी तरह टल गया है।

मेरी तीमारदारी की ज़रूरी शर्त यह थी कि मुझे एक मिनट के लिए भी अकेला न छोड़ा जाए। मेरे भाई, मेरी भाभी और उसके रसोईघर में खाना बनाने वाली कूचबिहार की बंगाली नौकरानी बारी-बारी से मेरे पास बैठते। मुझे इन तीनों के अलावा कोई और शख्स अक्सर बिस्तरके करीब मेरे पैताने बैठा दिखाई देता। उसकी उपस्थिति कभी-कभी इस कदर बेबर्दाश हो जाती कि मैं अपने घर वालों से शिकायत दर्ज करता। भाई मेरी बातें सुनकर मुझे शांत और असंपृक्त रहने की सलाह देते। या फिर मेरी बेचैनी कुछ ज्यादा ही बढ़ने लगती तो वे कंबल से मेरे बिस्तर को साफ करके दिखाते। ऐसे में रियायत बखाने वाले अंदाज़ में वह मेरे पास से उठकर बाहर के दरवाजे के बाहर दीवार से सटकर फर्श पर ही बैठ जाता। मैंने एकाधबार हिम्मत बटोरकर भाभी से पूछना चाहा कि यह यहां से जाता क्यों नहीं है। भाभी कुछ दयनीय भाव में अपनी नज़रें

आसमान की ओर उठाती, फिर चिंता वाले भाव में अपनी गर्म हथेली मेरे माथे पर रख देती। जाहिर है कि मेरी स्थिति को एक मरीज की हैसियत से आगे देख पाना उन सबके लिए काफी मुश्किल था।

चौथा दिन गुजरने तक मेरी हालत कुछ-कुछ स्थिर होती दिखाई देने लगी। डॉक्टर के कहने पर, कि यह एक अच्छा संकेत है, भाभी ने दाल के पानी में थोड़ा सा ताज़ा नींबू निचोड़कर मुझे पिलाया। इतने दिनों के बाद मैंने जब पहली बार अखबार को खोलकर पढ़ने की कोशिश की तो पता चला कि शब्दों एवं वर्तनी का ज्ञान बेतरह गड़बड़ा गया था। गोया कि दिमाग के भीतर रक्खी तमाम किताबों को किसी ने बेरहमी से तहस-नहस कर डाला हो। बहुत मामूली बातें भी मुझे बमुश्किल याद हो पाती, जबकि बचपन के कुछ भूले बिसरे वाकए अक्सर बिना संदर्भ के याद आने लगते। डॉक्टर के अनुसार यह दिमाग के भीतर की बनावट में अप्रत्याशित परिवर्तन होने की वजह से हो रहा था। उसने बार-बार यह कहा कि मुझे शुकुगुजार होना चाहिए कि दिमाग में कोई बड़ा नुकसान नहीं हुआ। अक्षरों की बुनावट को लेकर हुई इस भयानक कमी को वे सब बहुत गौण मानते रहे, जबकि हकीकत यह थी कि मेरे भीतर की भाषा की समूची बाराखड़ी एक सिरे से बदल गयी थी। यही नहीं, उस बुनावट के साथ-साथ, या कि उसके समानांतर खामोश दबी हुई आहटों से कोई लगातार जैसे चहलकदमी करता हुआ सा महसूस होता। किसी बिसरे हुए फिल्मी गीत की ये अधूरी पंक्तियां मेरे भीतर किसी नगाड़े की तरह गूंजने लगतीं:

*... तारे नहीं अंगारे हैं ये और चांद भी जैसे जलता है  
नींद कहां सीने पे कोई भारी कदमों से चलता है  
ऐ प्यासे दिल बेजुबां तुझको ले जाऊं कहां...*

जेहन में पंक्तियां दोहराकर मैं अचानक ठिठक जाता। मुझे यूं महसूस होता जैसे कोई बेहद कौतूहल भरी आंखों से मेरे मस्तिष्क की नसों और शिराओं में फैली भाषा की हर दिमागी संरचना को बखूबी पढ़ता चला जा रहा है। लगता जैसे किसी ने मेरे भीतर की समूची शाब्दिक इमारत को पूरी तरह पढ़कर उसे सार्वजनिक रूप से नंगा कर दिया है। मेरे जेहन का पूरा नक्शा अब किसी हल की गयी पहेली की तरह हर चौराहे पर चिपका दिया लगता था।

अपने भीतर की इस भयानक उथल-पुथल से पूरी तरह बेखबर मेरी भाभी किसी साक्षात देवी जैसी मुद्रा में चुपचाप मेरे सिरहाने बैठी मेरे चेहरे की ओर देखती रहती। उन्हें सबसे ज़्यादा संतोष इस बात से होता कि ईश्वर का लाख शुकु है, उसने मेरी जान बक्श दी। हर समय उन्हें इस बात की चिंता रहती कि मैं समय पर दवा खा रहा हूं या नहीं और डॉक्टर के बताए अनुसार मेरे शरीर को समुचित एवं सही आहार मिल रहा है या नहीं। मेरी दिमागी हालत को वह ईश्वर की मर्जी मानकर उस पर काबू रखने की सलाह देती।

दो-चार दिन गुजर चुकने के बाद मैंने काफी हताश भाव से डॉक्टर को बताया कि मेरे भीतर जैसे कोई छैनी-हथौड़ी लेकर सब-कुछ चकनाचूर करने पर तुला हुआ है। रात में तकिए पर सिर रखते ही बिलों में से निकलते चूहों की तरह कोई मेरे दिमाग के तमाम तहखानों की खोजबीन करने लगता। डॉक्टर ने बहुत गौर से मेरी ओर देखने के बाद मुझे सांत्वना दी कि मेरी बीमारी में ये सारे लक्षण सामान्य हैं और समय के साथ दिमाग की तमाम पुरानी गतिविधियां फिर से लौट आएंगी। मेरी तसल्ली के लिए उन्होंने रात में सोने के लिए एक ट्रैक्वेलाइज़र किस्म की दवा भी लिखकर दी, जिससे रात में आठ-नौ बजते ही मुझपर एक अजीबोगरीब बेहोशी छाने लगती और फिर सारी राते मेरे खयालों में गज़ब की उथलपुथल होती।

एक सपना था, जो तकरीबन हर रात पीछे घूमी गयी रील की तरह बार-बार मुझे दिखाई देता। दिल्ली में अपने घर की छत पर खड़ा मैं यहां-वहां सुलगायी जाती आग को देखकर पता नहीं क्यों बेकाबू

होता चला जाता। गली में दंगा फैलाने वालों के पागल हुजूम थे। उन्हें देखते-देखते पता नहीं कब, अपने घर की नज़रों से बचता मैं जीने की सीढ़ियों से नीचे उतर जाता। अगले दृश्य में मकानों को आग लगाती भीड़ के बीचोंबीच मेरा अपना चेहरा होता। मेरी कनपटी के ऊपर खून के दबाव से माथे की नसें फटने लगती। मकानों, दुकानों और चौराहों पर दहशत फैलाती उस भीड़ के बीच मैं क्या कर रहा था? लेकिन हर रात सारे दबाव के बावजूद सब की नज़रें चुराकर मैं सीढ़ियों से उतरकर गली में होता। जुनून की इंतहा में कभी-कभी जब आधी रात मेरी नींद टूटती तो लगता कि मेरे कमरे से अभी-अभी कोई उठकर बाहर गया है। बगल के कमरे में भाई के खरटि बज रहे होते। मैं डर के मारे नींद की बेहोशी में दुबारा डूबने से घबराता। मेरा गला सूख चुका होता। लेकिन दवा के असर से बहुत जल्दी फिर से मैं बदहवास खुमारी में गोते लगाने लगता और नींद के उतरते ही फिर से नीचे मुहल्ले में यहां-वहां सुलगती हिंसा भरी आग होती। स्मृति के तहखानों में कोई जैसे सारी इबारत को हाथ से बिखराकर ऊलजलूल उद्गार में बदल देता। और फिर सुबह उठने पर मेरे जेहन में एक सिरे से बेतरहा शर्म और पश्ताचाप की गर्म राख होती। उन दंगाइयों की भीड़ में मेरा चेहरा किस तरह शामिल हो गया था? वह मैं ही था, या कि मेरे चेहरे वाला कोई और शख्स अपनी हरकतों के लिए मुझे जिम्मेदार ठहरा रहा था?...

बहुत कोशिश के बाद भी अपने इस सपने का जिक्र किसी से नहीं कर पाया, लेकिन मेरे भीतर किसी जहरीली गैस की तरह रात-दर-रात यह सपना धू-धूकर जलता रहा।

\* \* \*

छः-सात दिनों के बाद जब मेरी बाहरी हालत में काफी सुधार दिखाई देने लगा तो डॉक्टर ने फैसला किया कि अब मुझे वे सारे परीक्षण पूरे कर लेने चाहिए जो सिर्फ अस्पताल में जाकर ही कराए जा सकते थे। उन्होंने मुझे तसल्ली दी कि इन परीक्षणों से मेरे दिमाग को कोषों को पहुंची अंदरूनी क्षति का सही अंदाज़ा भी चल सकेगा।

इसके अगले दिन ही डॉक्टर की सलाह के अनुसार जब मैं रिक्शे में बैठकर अस्पताल जा रहा था तो अचानक लगा कि रिक्शे के करीब, मेरी यात्रा के समानांतर कोई मेरे साथ चल रहा है। यह उपस्थिति बहुत महीन होते हुए भी बेहद साफ थी। इतनी साफ कि उस पर किसी तरह के संदेह की गुंजाइश नहीं थी। लेकिन फिर भी मेरे लिए किसी व्यक्ति को इसके बारे में समझा सकना बेहद मुश्किल था।

नर्सिंग होम पहुंचने पर डॉक्टर ने बताया कि एम आर आई द्वारा मेरे दिमाग का परीक्षण किया जाएगा और उसके बाद एक खास तरह की एंजिओग्राफी के लिए रक्त में एक रसायन मिलाया जाएगा। इन परीक्षण से पहले चार घंटों का उपवास आवश्यक था, जिसकी वजह से शाम तक अस्पताल में रुकना मेरे लिए जरूरी हो गया।

जिस वक्त मैं मशीन के नीचे आंखें मींचे, अपने माथे पर अलग-अलग आवाजों के झटके महसूस कर रहा था, उस वक्त अचानक लगा था कि किसी ने बर्फ से भी ठंडी हथेली को मेरी गर्दन पर रख दिया है। उस ठंडे स्पर्श का अजनबीपन दहला देने वाला था। भाभी और भाई से अलग इस खौफनाक स्पर्श को अब मैं पहचानने लगा था। वह ठंडी हथेली मेरी गर्दन को दबाने की कोशिश नहीं कर रही थी, बल्कि किसी मलहम जैसी चीज़ को त्वचा के भीतर ज़ब्त करने के अंदाज़ में धीरे-धीरे, मगर बेहद निश्चयात्मक ढंग से मेरे जिस्म को धीरे-धीरे मथ रही थी। एक बार शिद्दत से मेरी इच्छा हुई कि आंखें खोलकर देखूं, वहां कौन है, लेकिन एम आर आई के ऑपरेटर ने आंखें बंद करने की सख्त हिदायत दे रखी थी। कोई आधे घंटे के बाद जब मैं बाहर निकला तो मेरी गर्दन पर किसी तेल जैसी पर्त का अहसास था। मैंने इसके बारे में ऑपरेटर

से दरयाप्त की, लेकिन उसने गर्दन पर या कहीं और, किसी भी द्रव के इस्तेमाल से इन्कार किया। यही नहीं, उसने साफ तौर पर कहा कि पूरे टेस्ट के दौरान मरीज़ को छूने तक की सख्त मनाही होती है, ऐसे में शरीर पर कुछ भी लगाने का सवाल ही नहीं उठता। ऑपरेटर नहीं तो फिर वह कौन था, जिसके सर्द हाथों ने मेरी गर्दन को इस तरह दबोच रक्खा था? कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने दिमाग की इस वर्तमान अवस्था में मैंने किन्हीं काल्पनिक अहसासों को ईजाद कर लिया हो?

अगले परीक्षण के लिए मुझे कमरे में ले जाया गया, वहां गज़ब की ठंडक थी। ऑपरेटर ने पैरों को ढंकने के लिए मुझे मोटा कंबल दिया। फिर उसके बाद उसने मेरी बांह पर इंजेक्शन लगाया और छाती पर ई सी जी जैसे इलेक्ट्रोड चिपकाने में व्यस्त हो गया। यही वह क्षण था जब मैंने देखा था कि एक छाया सी शक्ति में वे कमरे का दरवाज़ा खोलकर बेधड़क अंदाज़ में उस वातानुकूलित कमरे में दाखिल हुए थे और कुछ भी बोले बगैर मेरे करीब आकर खड़े हो गए थे। वे मुझसे क्या चाहते थे? मैंने खौफ से चिल्लाना चाहा, लेकिन तब तक मेरी धमनियों में दौड़ता इंजेक्शन का द्रव मेरे पूरे जिस्म को शिथिल बनाने लगा था। आंखें बंद होने के बावजूद मुझे निश्चित तौर पर लगा जैसे उस क्षण उस दवा के रसायन के समानांतर कोई और चीज़ ज़बरदस्ती मेरी नसों में चढ़ाई जा रही है। मैंने प्रतिरोध में अपने हाथों को चलाना चाहा, लेकिन तब तक दवा के प्रभाव में मेरी बाहें पूरी तरह सुन्न हो चुकी थी। उस नीम-बेहेशी की हालत में अचानक मेरी निगाहें बाहर की तरह भीतर लौटती तो एक झटके के साथ वे ऐन मेरे सामने थे, उस सारे गाढ़े काले कादे को किसी घड़े जैसे मर्तबान से बाहर की ओर उलटाने में व्यस्त। किसी भयानक बदबूदार उबकाई में डूबते हुए मैंने छूट निकलने की आखिरी नाकाम कोशिश की थी लेकिन उन्होंने बहुत फुर्ती से वह सारा सामान मेरे भीतर उंडेल दिया था और उसके बाद मुझे ज़रा सा भी मौका दिए मेरी पलकों के भीतर की ओर आहिस्ता से कूदे थे। मेरे लिए तय कर पाना बेहद मुश्किल था कि मेरे भीतर जो कुछ हो रहा था, वह भीतर उंडेली जा रही दवाओं का प्रभाव था, या कि कोई भयानक मानसिक लड़ाई वहां चल रही थी। फिर उसके बाद सब कुछ स्मृति की लहरों पर हिचकोले खाती स्मृतियों की तरह धीरे-धीरे मिटता हुआ क्रमशः शांत हो गया था और मेरी याददाश्त इतनी क्षीण होती चली गयी थी कि आगे का किस्सा मुझे स्वयं भी ठीक से याद नहीं।

परीक्षण के कुछ घंटे बाद जब मैं अपनी पहचान की ओर लौटा था तो डॉक्टर ने बहुत गर्मजोशी के साथ हाथ मिलाते हुए मुझे बताया था कि टेस्ट के नतीजे बेहद अनुकूल रहे हैं। सबसे अच्छी बात यह थी कि मेरा मस्तिष्क लगभग सही सलामत था तथा मेरा हृदय भी बिल्कुल ठीकठाक काम कर रहा था। लेकिन जब मैंने घुटनों में बेतरह दर्द का जिक्र किया तो उन्होंने कुछ अचरज से मेरी ओर देखते हुए कहा कि मैं समझ नहीं पा रहा, पिछले चार घंटों में आपके शरीर में यूरिक एसिड की मात्रा अचानक इस तरह चार गुना कैसे बढ़ गयी! क्या आपको किसी चीज़ से एलर्जी हुई है? अपने पच्चीस वर्ष के डॉक्टरी अनुभव में ऐसा मैं पहली बार देख रहा हूँ!

मैंने कुछ साहस महसूस करते हुए डॉक्टर से पूछा कि परीक्षण के दौरान कोई बाहर का व्यक्ति मेरे शरीर के साथ शरारत तो नहीं कर सकता? इस बार डॉक्टर ने अपनी आंखों को छोटा करते हुए कहा, “बिल्कुल भी नहीं! यह शहर का सबसे जाना-माना परीक्षण हाउस है। यहां के नतीजों को दिल्ली के एम्स वाले तक मानते हैं!... आपके दिमाग में एकखास तरह का डर बैठ गया है! प्लीज़, यह आपके और हम सबके लिए बेहतर होगा कि आप इस डर से बाहर निकलने की कोशिश करें!... आपके शरीर में यूरिक एसिड की मात्रा किसी भयानक एलर्जी की वजह से बढ़ गयी लगती है! हम इसे जल्दी ही ठीक करने की कोशिश करेंगे क्योंकि एलर्जी से बढ़ी एसिड की मात्रा उतनी ही जल्दी कम भी हो जानी चाहिए!... ज़रूरी यह है कि आप हम पर भरोसा रखें और अपने शरीर की शंकाओं और महत्वाकांक्षाओं को ढीला छोड़कर

रिलैक्स करें... प्लीज़!’’

और इसके साथ ही अपने हाथ में थामी दीवार से फिसलकर मैं मीलों गहरे किसी काले गड्ढे में बेआवाज़ लगातार गिरता चला गया था, गोया कि किसी अनंत छोर पर कोई बहुत देर से मेरे गिरने का इंतज़ार कर रहा हो...

\* \* \*

और सचमुच दो-तीन सप्ताह के अंदर ही मेरे शरीर के भीतर यूरिक अम्ल की मात्रा फिर से सामान्य स्तर पर आ गयी। डॉक्टर ने माना कि यह वृद्धि किसी आकस्मिक एलर्जी की वजह से हुई होगी। फिर उसने हंसते-हंसते यह भी स्वीकार किया कि डॉक्टरों को जब किसी मर्ज़ का पता नहीं चलता तो वे बहुत सुविधा के साथ उसे एलर्जी की संज्ञा दे डालते हैं। बहरहाल, अगले दो सप्ताहों के दौरान सभी ने माना कि मेरे स्वास्थ्य में बहुत तेजी से सुधार हो रहा है। मेरा रक्तचाप, मेरे खून में अम्ल की मात्रा और रक्त के संचार की गति, सभी कुछ सामान्य पर आ गया था। जिस दिन चारपाई पर बैठकर मैंने अपने हाथ से खाना खाया, उस दिन भाभी ने पता नहीं कौनसी मन्नत मनाई और रिश्तेदारों तथा दोस्तों ने खुशी ज़ाहिर की कि इतनी कठिन बीमारी के बाद भी मैं इतनी जल्दी इतने आश्चर्य ढंग से अच्छा-भला हो गया।

पिछले कई दिनों से वह गुमनाम साया मुझे अपने इर्दगिर्द दिखाई नहीं दे रहा था और अपनी वैचारिक हालत के चलते मेरे लिए इसे अपने मन का वहम मानने में भी कोई खास दिक्कत नहीं थी। मेरे मस्तिष्क के साथ एकमात्र नुकसान यह हुआ था कि बहुत से शब्दों के हिजे मेरे दिमाग से पोंछी गयी तख्ती की तरह एकाएक गायब हो गए थे। कभी-कभी बोलते-बोलते मैं अचानक अटक जाता और मेरे लिए उपयुक्त शब्द का चुनाव करना असंभव हो जाता। न चाहते हुए भी मेरी ज़बान पर ऐसे शब्द आने लगते, जिनके इस्तेमाल से मुझे परहेज़ था। लेकिन डॉक्टर ने मुझे सांत्वना दी कि इस बीमारी में अक्सर ऐसा हो जाता है। लेकिन चिंता न करें, इंसान का मस्तिष्क इतना उर्वर है कि आप जल्दी ही फिर से सीख जाएंगे!

मुझे अपने भीतर सभी कुछ बेहद बदला-बदला सा लग रहा था, जैसे किसी ने मेरे हृदय या मस्तिष्क का ट्रांसप्लान्ट कर डाला हो। एक दिन शुक्रवार की सुबह मेरी भाभी ने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कुछ प्यार से कहा कि अब मैं ठीक हो रहा हूँ। तुम्हें तो इन बातों में विश्वास नहीं है लेकिन मैंने संतोषी माता से मनौती मांगी थी, मैं सुबह वहां पूजा करके आऊंगी!

भाभी की बात सुनकर मेरे भीतर कहीं एक झटका सा लगा और संवेदना वश मेरी आंखों से आंसू निकल आए। “क्या मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ?” भाभी ही नहीं, मुझे स्वयं को अपनी इस धार्मिक आस्था पर घोर आश्चर्य हुआ। क्या यह मुझ जैसा नास्तिक बोल रहा था?... “यह सब ईश्वर की लीला है! तुम पर उसकी विशेष कृपा है! जरूर चलो मेरे साथ!”

लेकिन मुझे इससे भी अधिक आश्चर्य इस बातसे हुआ कि भाभी के साथ तैयार होने तक मैं अपने भीतर इक्कीस शुक्रवार के व्रतों तक के लिए अपने-आपको तैयार कर चुका था। मेरे भीतर जैसे कोई बार-बार मुझे कठघरे में खड़ा करता जा रहा था। मेरे भीतर यह कैसा परिवर्तन आ गया था? एक अजीब सी उथल-पुथल मैं बाहर-भीतर महसूस कर पा रहा था।

दिमाग में चल रही जद्दोजेहद के तहत मैं भाभी के साथ मंदिर तो नहीं गया, लेकिन न जाने का अफसोस काफी वक्त तक मेरे साथ रहा। एक बार किसी दोस्त के सामने मैंने इस बात का जिक्र किया तो किस्सा फैल गया और यार-दोस्तों ने मेरे व्रत का वाकया बहुत मजे लेकर दोहराया। किसी ने यहां तक कह

डाला कि मौत से पहले लोगों को अक्सर खुदा की याद आती है, लेकिन मैंने कम से कम अपने लिए कोई बेहतर या अधिक विश्वसनीय आराध्य तो ढूंढा होता! लेकिन इस सारे मजाक के समानांतर मेरे मन में लगातार एक गहरा डर व्याप्त होता जा रहा था। मुझे डर लग रहा था कि मेरी अनास्था से खफा होकर संतोषी माता या उसकी बिरादरी का कोई अन्य देवी-देवता कहीं मेरा भयानक अनिष्ट न कर डाले।

पांच-छः दिनों के बाद हमारे पड़ोस के प्रोफेसर वर्मा मेरा हाल पूछने के लिए हमारे घर आए। प्रोफेसर वर्मा विश्वविद्यालय में कानून पढ़ाते हैं और पिता के जमाने से ही वे हमारे परिवार के निकट मित्र रहे हैं। मेरी प्रोफेसर वर्मा के साथ इसलिए भी जमती है क्योंकि वे खुले दिमाग वाले खुशतबीयत व्यक्ति हैं और विरोधी स्वभाव वाले व्यक्तियों के बीच भी अपनी बात को दो-टूक ढंग से रखने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। लेकिन इस बार प्रोफेसर वर्मा के घर में दाखिल होते ही मुझे लगा कि एक अदृश्य सा तनाव पूरे कमरे में व्याप्त हो गया है। और जब मैंने उनके चेहरे की ओर देखा तो कुछ यूँ महसूस हुआ जैसे उनके दिमाग से कुछ अजीब तरह की तरंगें उठ रही हैं, जिनकी भयानक गंध से सांस लेना तक मुश्किल होता चला जा रहा है। प्रोफेसर वर्मा का दिमाग जैसे उठती-गिरती तरंगों का केंद्र-बिंदु बन गया था और समुद्र से उठते तूफान की तरह उनके थपेड़ों से पूरा कमरा डगमगाने लगा था। “क्या बात है, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है?” मेरे चेहरे के भाव को पढ़ते हुए प्रोफेसर वर्मा ने कुछ चिंतित भाव से मेरी ओर देखा तो मैंने अपने भीतर एक बेहद आक्रामक सी प्रवृत्ति को उफानते हुए महसूस किया। मुझे लगा कि अभी वे कोई ऐसी बात कहने वाले हैं जो मुझे बेतरह असह्य और नागवार गुज़रेगी। मेरी भाभी इस बीच भीतर से चाय का कप और नाश्ते का कुछ सामान लाकर हमारे करीब ही बैठ गयी थी। उनकी उपस्थिति से न जाने कैसे, स्थितियाँ कुछ संभलने सी लगी। लेकिन भाभी के जाते ही मेरे लिए फिर अपनी आक्रामकता पर काबू करना असंभव हो गया। मैंने छूटते ही व्यंग भरे स्वर में प्रोफेसर वर्मा से सवाल किया कि वे मुसलमानों की स्थितियों को लेकर इतने चिंतित क्यों रहते हैं? “मैं कहां चिंतित रहता हूँ!” प्रो. वर्मा ने कुछ आश्चर्य से मेरी ओर देखते हुए कहा, “लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष देश में मुसलमानों और दूसरे अल्पसंख्यकों को समानता के जितने संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं, उन्हें सही ढंग से जीवन के हर पहलू में उतारना क्या हम सबकी सामूहिक चिंता और जिम्मेदारी का विषय नहीं होना चाहिए?”

“जिम्मेदारी माई फुट!” मैं अपनी आंखें छोटी करते हुए उनके कुछ और नज़दीक खिसक आया था, “क्या आपको नहीं लगता कि इस देश में मुसलमानों के साथ वही सुलूक किया जाना चाहिए जैसा हिटलर ने अपने जमाने में यहूदियों के साथ किया था!”

प्रोफेसर वर्मा ने इस बार कुछ भाँचक्के अंदाज़ में मेरे चेहरे की ओर देखा था, यह तय करने के लिए कि मैं कहीं मजाक तो नहीं कर रहा हूँ। फिर वे भीतर से भाभी को आवाज़ लगाते हुए अपने उसी पुराने आत्मीय अंदाज़ में बोले थे कि “प्रेम लंबी बीमारी से उठा है, इसे कुछ वक्त तफरीह में गुजारना चाहिए! क्यों प्रेम?”

“आप मुझे टालने की कोशिश कर रहे हैं अंकल!” मैंने अपनी आक्रामकता को बरकरार रखते हुए कहा था, “लेकिन इस देश का धर्मनिरपेक्ष ढाँचा ही इसकी सबसे बड़ी बीमारी है। बंदूक की तानाशाही से दो दिन में सब-कुछ दुरुस्त किया जा सकता है!”

“यार तुम पक्ष-निरपेक्ष को छोड़ो और अभी पूरा आराम करो!” वर्मा साहब ने आत्मीयता से मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, “मैं फिर आऊंगा तो हम लोग जमकर बातें करेंगे!” और वे चाय की प्याली आधी छोड़कर मुझे कोई मौका दिए बगैर, जल्दी से कमरे से बाहर निकल गए!

उनके जाने के बाद मेरा दिमाग कई तरह के अजीबोगरीब खयालों से घिर गया। वे कैसी तरंगें थीं जिनके प्रभाव से समूचा कमरा इस तरह बेतरह डगमगाने लगा था? और प्रोफेसर वर्मा जैसे लोग क्या किसी साजिश में शरीक होकर इस तरह की बातें कर रहे थे? लेकिन यहां मेरे दिमाग में थोड़ी सी उलझन थी। जहां तक मुझे याद था, इस तरह के तमाम मसलों पर पहले मेरे विचार पूरी तरह प्रोफेसर वर्मा के विचारों से मेल खाते थे। क्या अब उन्होंने अचानक अपनी सारी धारणाएं बदल दी थीं, या कि मेरे भीतर ही कोई विचित्र बदलाव आ गया था?

और उसी क्षण अपनी नज़रों को बाहर की जगह वापस भीतर मस्तिष्क की ओर लौटाते हुए अचानक मुझे लगा कि वहां भीतर कोई है। अपने भीतर के उस सलेटी से साए का कंपन देखते हुए जैसे मेरी समूची चेतना कांप गयी। मेरी भीतरी सोच को जैसे किसी ने अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ रक्खा था। मैं छटपटाने की कोशिश करता तो यह गिरफ्त जैसे कुछ और सख्त होने लगती। मैं अपने-आप से जिरह करने की कोशिश करता तो लगता कि दर्द के दबाव से मेरा सिर फट जाएगा। मेरे दिमाग की कुछ धमनियों पर जैसे किसी ने पहरा लगा रक्खा था और अब मेरे स्वयं के लिए भी जैसे किन्हीं रास्तों से गुजरना वर्जित हो गया था।

अगले दस बारह दिनों के दौरान, अलग-अलग मौकों पर मैंने बहुत साफ तरीके से पाया कि मेरे अधिकांश दोस्तों के राजनीतिक और सामाजिक नज़रिए में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन महसूस किया जाने लगा है। चूंकि यह परिवर्तन सामूहिक था, इसलिए इस शक की भी पूरी गुंजाइश थी कि वे सारे लोग अपनी जगह पर सही थे और मेरी खुद की दिमागी बुनावट में अब एक सिरे से तब्दीली आ गयी थी। यही नहीं, हमारे घरों का फेरा लगाने वाला एक सिरफिरा पंडित जो हिंदुस्तान को आर्यावर्त कहता था और जिसके अनुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मण को छोड़कर देश की तमाम दूसरी जातियां किसी न किसी रूप में श्रेष्ठता के कर्ज से डूबी हुई थीं, अब मुझे काफी सहानुभूतिपूर्ण और विद्वान दिखाई देने लगा था। मुझे आश्चर्यजनक रूप से सकारात्मक मूड में देखकर एक दिन उसने फाटक से मेरे माथे पर चावल और केसर का भीगा तिलक चांपा तो जवाब में मैं जब में दिखाई देते सारे पैसे और नोट उस पंडित की हथेली में डालने को हुआ। मेरी भाभी ने दूर से देखकर मुझे टोका कि यह क्या कर रहे हो, दक्षिणा में तो पांच का सिक्का भी बहुत होता है! पंडित ने पैसों के वज़न से अभिभूत होकर जिंदगी में पहली बार जब मेरे सिर पर हाथ फिराकर मुझे आशीर्वाद दिया तो मुझे सच्चे मन से लगा कि इस दुनिया की क्रूरतम प्रवृत्तियों से लड़ने का एक कारगर हथियार मेरे हाथ लग गया है।

इसी के अगले दिन कॉफी हाउस में दोस्तों के बीच अचानक किसी बात पर मेरी दो पहचान के लोगों के साथ तू-तू मैं-मैं हो गयी तो मैं इतना उत्तेजित हो गया कि लगा, अभी हमारे बीच हाथापाई की नौबत आ जाएगी। मेरे दोस्तों ने बहुत मुश्किल से मुझे संभाला और फिर उसके बाद में वे मुझे घर तक छोड़ने भी आए। जाने से पहले उन्होंने मेरी भाभी से कहा कि मैं सारे रास्ते न जाने किस अदृश्य व्यक्ति से धमकी भरे स्वर में चिल्ला-चिल्लाकर बात कर रहा था। भाभी ने जब बाद में उस व्यक्ति का नाम पूछना चाहा तो मैं कुछ भी स्पष्ट रूप से बता नहीं सका, लेकिन मैंने इतना जरूर कहा कि वे लोग अगर फिर कभी दिखाई दे गए तो मैं सीधे-सीधे उनसे निपट लूंगा।

मेरी बातों को सुनकर भाभी काफी डर सी गयी। शाम के वक्त वे कमरे में आकर मुझसे बातें करने की कोशिश करती रही। उन्होंने बताया कि दो-तीन बार नींद में उन्होंने मेरा चेहरा देखा तो उन्हें लगा जैसे मेरे भीतर पता नहीं क्या-कुछ चल रहा है। मेरा चेहरा बेहद क्रूर और डरावना हो आया था। तुम मुझे बताओ, ऐसी क्या परेशानी है?

भाभी के प्रश्नों के जवाब में मैंने उनसे कहा कि मुझे कोई व्यक्ति मेरे करीब बैठा मेरे जिस्म के भीतर आने या उससे एकात्म होने की कोशिश करता लगता है। अब वह व्यक्ति तो दिखना बंद हो गया है, लेकिन लगता है जैसे उस व्यक्ति का कोई अंश मेरे भीतर आ गया है और वह मेरी समूची सोच पर अपना कब्जा जमाए हुए हैं। कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें वह सोचने से रोकता है और कुछ बातें खुद-ब-खुद, जैसे मेरी इजाजत के बगैर मेरे दिमाग में चलने लगती हैं, और एक सीमा से आगे उनपर मेरा कोई वश नहीं रहता।

हमारे पड़ोस में एक चाची रहती हैं जिनके पास तमाम पुरानी एवं पुरतैनी दवाइयों, टोटकों और मल्हमों का खजाना हमेशा मौजूद रहता है। जब भाभी ने उनके सामने मेरे मर्ज़ का जिक्र किया तो उन्होंने तय पाया कि मेरे भीतर किसी दूसरी खुराफाती आत्मा का प्रवेश हो गया है, जिसे बाहर निकालने के लिए एक अदद पहुंचे हुए ओझा की सेवाओं का सहारा लेना आवश्यक होगा। मैंने भाभी से कहा कि मुझे इस सुझाव पर कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते मुझे इस एहसास से छुटकारा मिल जाए। तुम जो भी मुनासिब समझो करो।

ओझा के अंधविश्वासी सुझाव पर भाई से तीव्र प्रतिक्रिया की उम्मीद की जा सकती थी। लिहाजा तय यह हुआ कि अगले दिन भाई के दफ्तर चले जाने के बाद ओझा को घर बुलाने का न्यौता दिया जाए। चाची का कोई भतीजा खास तौर पर ऑटोरिक्शा से ओझा को बुला ले आया। मुझे लगा कि वह कोई चुस्त किस्म का बेहद चौकन्ना और कांइयां व्यक्ति निकलेगा। लेकिन पहली ही नज़र में वह मुझे काफी अप्रभावकारी और अनुपयुक्त लगा। वह एक पंडिताऊ किस्म का आदमी था जिसने अपने चेहरे पर मोटे चश्मे वाला ऐनक चढ़ा रक्खी थी, जो उसके किरदार से बिल्कुल मेल नहीं खाती थी। यूं भी इससे पहले मैंने अपनी जिंदगी में कभी चश्मे वाला ओझा नहीं देखा था। अपनी आंखों पर चढ़े मोटी नज़र के शीशों के भीतर से वह बहुत देर तक विचित्र उच्चारण वाले लहजे में पढ़े जाने वाले मंत्रों के साथ आए-बाएं-शाएं करता रहा। फिर उसने काफी हास्यास्पद ढंग से एक फूस वाले झाड़ू को ज़मीन पर फटकारना शुरू कर दिया। बहुत सारे मंत्रों को कई बार अंत-शंत उच्चारण में बोल चुकने के बाद जब आखिरकार वह मेरी ओर मुखातिब हुआ तो मुझे अपने भीतर एक अजीब सी बेचैनी महसूस होने लगी। खामख्वाह किसी मृत आत्मा के जुनून में डोलते उस ओझा का चेहरा बहुत दुनियावी ढंग से मामूली और साधारण हो गया था। मैंने पाया कि उस कमरे में ओझा की उपस्थिति अचानक बर्दाश्त के बिल्कुल बाहर होती चली जा रही है। उसने जब मेरी सांस को महसूस करने की कवायद शुरू की तो किसी आग पकड़ती लपट की तरह मेरे भीतर प्रतिरोध की एक तीखी लहर सी उठी और मुझे लगा कि उस आग में सब-कुछ जलकर राख हो जाएगा। उसके बाद क्या हुआ मुझे बिल्कुल भी याद नहीं। लेकिन जब होश आया तो भाभी अपने जिस्म का पूरा जोर लगाकर मुझे किसी से अलग करने की कोशिश कर रही थी। “अरे, छोड़ो, मार ही डालोगे क्या! छोड़ो उसे जाने दो... जाने दो...” मैंने अपनी कनखियों से बाहर खिड़की के बाहर नज़र डाली तो नीचे ओझा अपनी धोती को संभालता हुआ हड़बड़ी में ऑटो रिक्शा में सवार होता दिखाई दिया। ओझा का इस तरह भाग खड़े होना हास्यास्पद था, लेकिन भाभी ने मुझे बताया कि अपने जुनून में मैंने उसकी जमकर पिटाई की थी और वह आखिरकार अपनी जान की खैर मनाता हुआ वहां से भाग निकला था। कमरे के कोने में एक ओर वही फूस का झाड़ू पड़ा था, जिसे जल्दी में वह ओझा शायद अपने साथ ले जाना भूल गया था। मैं समझ नहीं पाया कि ओझा की उपस्थिति में मुझे यह क्या हो गया था?

इतने दिनों के साथ उस रात मुझे फिर वही सपना दिखाई दिया। इस बार मैं किसी और के घर में था और यह घर साबरमती आश्रम के नज़दीक किसी गली में था। सड़क पार करते ही आप दरख्तों के बीच फैली ठंडी हवा वाली उस छोटी सी कोठरी में पहुंच जाते थे जहां फर्श पर बैठकर बापू काम करते थे। सामने

खुले प्रार्थना स्थल के उस ओर साबरमती नदी बहती थी। लेकिन मेरे सपने में इन सारी चीजों के बाहर सड़क पर लोगों की भीड़ का नजारा था। मुहल्ले में कहीं भयानक किस्म का सांप्रदायिक दंगा हो गया था, जिसमें कई लोगों की जान जाती रही थी। वे सारे लोग पता नहीं किस बात से इतने उत्तेजित थे और उनमें से बहुत से लोगों ने हाथों में लोहे की रॉडें, बल्लम और फरसे पकड़ लिए थे। वे सब आश्रम के मुख्य दरवाजे से बाहर निकलकर सड़क पर जुटते जा रहे थे। उस भीड़ से कुछ हटकर गली के मकान के तहखाने में कुछ लोग नज़रबंद थे। इनमें पुरुषों के अलावा कुछ औरतें भी थी। ये सारे लोग ही दरअसल फसाद की असली जड़ थे। इन सारे लोगों का काम तमाम करने की जिम्मेदारी उस भीड़ को सौंपी गयी थी। उस भीड़ के हर एक सदस्य के दिल में गज़ब का जज़्बा था। वे बहुत आसानी से गंडासे की जगह त्रिशूल से भी अपना काम चला सकते थे। और मैंने अचानक देखा था कि उसी तरह का एक हथियार मेरे हाथ में भी थमा दिया गया था। वह शायद कोई गर्भवती औरत थी, जिसकी उंगली से उसका छः-सात साल की सिड़ी किस्म का बच्चा घिसट रहा था। हमें यथासंभव सफाई से अपना काम पूरा करने के आदेश दिए गए थे। खूनखराबा किसी को भी पसंद नहीं था। और इसी के साथ एक भयानक ज़हर भरी हिचकी से मेरा समूचा जिस्म थरथराने लगा था। यही वह क्षण था जब एक झटके के साथ मेरी आंख टूट गयी थी और रात के खौफनाक सन्नाटे में घृणा के रिसाव को किसी भयानक नासूर की तरह मैंने अपने जिस्म के हर पोर से फूटते हुए महसूस किया था। अगर यह मैं था तो इस दशा तक पहुंचने से बहुत पहले ही मुझे स्वयं अपने आपको समाप्त कर देना जाना चाहिए था...

सपने के बाद की सुबह, रात के सपने से भी ज्यादा दर्दनाक थी। मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत यह थी कि इस हाल में भी अपनी दिमागी गड़बड़ी का सही अहसास मुझसे नहीं छूटा था। अपनी मानसिक प्रक्रिया की तह तक जाते हुए मुझे कहीं अपने स्वयं के दिमाग, अपने शरीर से नफरत होने लगती। और साथ ही यह अहसास पहले से भी अधिक तीव्रता से घर करने लगता कि जिन जीवाणुओं ने मेरे मस्तिष्क में घर कर लिया है, उनसे लड़ने का कोई-न-कोई रास्ता ज़रूर होना चाहिए। मेरे मुहल्ले में मेरे भीतर किसी भयानक एवं अत्यंत शक्तिशाली प्रेतात्मा के वास की खबर बिजली की सी तेज़ी से फैल गयी थी। गली मुहल्ले के नौजवान इस बात को दोहराते नहीं थकते कि कैसे मैंने एक ही झटके में उस परमज्ञानी ओझा को खिड़की से उठाकर नीचे फेंक दिया और कैसे वह अपनी धोती को संभालता हुआ रिक्शा में छिपकर भागा। पड़ोसी की चाची ने मेरी भाभी को जल्द से जल्द पहाड़ वाले गुरुमहाराज की शरण लेने की नेक सलाह दी थी और मेरी भाभी इस सारे घटनाचक्र से हतप्रभ सिर्फ इतना ही दोहराती रही थी कि देवी की कृपा रही तो एक दिन सब कुछ फिर से ठीक हो जाएगा।

सुबह बहुत सारा वक्त गुज़र चुकने के बाद भी जब रात में देखे गए सपने का खौफ कम नहीं हुआ तो मैंने अपने परेशानी को लेकर प्रोफेसर वर्मा से मिलने का फैसला कर लिया। मेरे सामने सबसे पहली दिक्कत यह थी कि अपनी बातों से मैं किस तरह उन्हें समझा पाऊंगा कि मेरे साथ जो कुछ हो रहा है, वह किसी मनोरोग का लक्षण नहीं है, बल्कि मैं किन्हीं बाहरी ताकतों के प्रभाव में सब-कुछ सोचते समझते हुए भी मानसिक रूप से परार्थीन बनता जा रहा हूँ।

प्रोफेसर वर्मा ने मेरी बातों को बहुत ध्यान से सुना और फिर किसी विवेकशील व्यक्ति की तरह तुरंत किसी निष्कर्ष तक पहुंच जाना उचित नहीं समझा। बल्कि काफी विचार करने के बाद उन्होंने मुझे राय दी कि मुझे किसी अच्छे न्यूरोसर्जन से परामर्श करना चाहिए ताकि सबसे पहले स्पष्ट हो सके कि मेरे मस्तिष्क के किन क्षेत्रों पर इस बाहरी हस्तक्षेप का प्रभाव हुआ है। ज़रूरत पड़ने पर न्यूरोसर्जन किसी दूसरे मनोचिकित्सक से भी सलाह कर सकता है।

इस बीच मेरे घर से पिटकर जा चुके ओझा ने पड़ोस की चाची के जरिए संदेश भिजवाया कि यदि मैं स्वयं उसके पास आकर उसकी बताई गई विधि का पालन कर सकूँ तो वह उस जिद्दी प्रेतात्मा से जूझने की एक और कोशिश कर सकता है। चाची एवं अपनी भाभी के दबाव के बावजूद मैंने उस ओझा के चक्कर में और न उलझने का निर्णय ले लिया। लिहाजा कुछ दिनों के बाद ही प्रोफेसर वर्मा की राय पर अमल करता हुआ मैं प्रोफेसर वर्मा के साथ जाने-माने न्यूरोसर्जन डॉक्टर परिहार से मिलने गया था।

डॉक्टर परिहार स्वभाव के बेहद मृदु और बेहद कम बोलने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने सबसे पहले मेरी पिछली तमाम रिपोर्टें देखी, फिर काफी आत्मीय लहजे से मुझसे जानना चाहता कि मेरी परेशानी की वजह क्या है। “मुझे अपने भीतर सब-कुछ बदला हुआ सा महसूस हो रहा है!” मुझे समझाने में कठिनाई हो रही थी, “कभी-कभी लगता है जैसे कोई मुझे सोचने से रोक रहा है! मेरे मुंह से गलत शब्द निकलते हैं। लगता है जैसे कोई और मेरे भीतर से बोल रहा है... मेरे न चाहने के बावजूद मेरे भीतर से हिंसा के भयानक प्रतिस्वर निकलते हैं... जैसे कोई मुझे जानबूझकर उकसा रहा हो।... मेरे दिमाग को किसी ने जैसे अपने कब्जे में कर लिया लगता है।... मुझे लगता है कि वह मेरे माध्यम से कुछ बहुत भयानक करना चाहता है... मैं कभी-कभी बहुत साफ तरीके से उसकी उपस्थिति को अपने दिमाग में महसूस कर सकता हूँ!... उसका वहां होना इतना वास्तविक है कि मैं....”

“देखिए”, मुझे धैर्य से सुन चुकने के बाद वे आखिरकार बोले, “मैंने आपकी रिपोर्टें बहुत ध्यान से देख ली हैं। इन्हें अलग रखकर यदि मैं सिर्फ आपकी परेशानी की बात करूँ तो चालू समझ के अनुसार आप सिजोफ्रेनिया, विभाजित व्यक्तित्व या ऐसी ही किसी मनोवैज्ञानिक व्याधि के शिकार हो सकते हैं। एक न्यूरो-सर्जन के नाते, मुझे ये बातें सुनकर आपको किसी तजुर्बाकार मनोचिकित्सक या साइकिएट्रिस्ट का नाम बतलाना चाहिए। लेकिन आपकी रिपोर्टें काफी परेशानी में डाल देने वाली हैं और मैं नहीं समझता कि इन्हें लेकर कोई मनोचिकित्सक आपकी कोई मदद कर पाएगा...”

“...देखिए, आपसे साफ कहूँ तो आपकी एम आर आई की रिपोर्ट ने मुझे काफी उलझन में डाल दिया है। दरअसल आपके दिमाग का एक हिस्सा एम आर आई में बेहद अजीब और असामान्य दिखाई दे रहा है और मुझे आश्चर्य है कि आपका इलाज करने वाले डॉक्टर का ध्यान इस ओर नहीं गया। मेरे लिए तय कर पाना कठिन है कि इसका क्या कारण है और इसका आपके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। कुछ यूँ समझ लीजिए कि आपके दिमाग के एक हिस्से की बनावट में एक खम सा दिखाई दे रहा है, जैसे वहां कोई पेंच या अवरोध हो। नहीं, यह रुकावट किसी ट्यूमर या गांठ जैसी नहीं है, लेकिन फिर भी इसकी टिशू और मांसपेशियों की बनावट बहुत नयी और ताजा दिखाई दे रही है। अच्छा मुझे पक्के तौर पर बताइए, बचपन से लेकर अब तक आप क्या कभी दिमाग की किसी बीमारी का शिकार हुए हैं? और पिछले एक वर्ष में आपके दिमाग या आपकी गर्दन पर कोई गंभीर चोट तो नहीं लगी है?”

“नहीं!” मैंने शिद्दत से अपना सिर हिलाया। मेरी बात सुनकर डॉक्टर परिहार फिर से उलझन में पड़ गए। “तब मैं फिर से आपका एम आर आई करवाना चाहूँगा, ताकि तय हो सके कि आपके दिमाग का यह हिस्सा समय के साथ उसी तरह स्थिर है, या कि इसमें कुछ परिवर्तन हो रहा है। परीक्षण के दौरान मैं स्वयं मौजूद रहूँगा और जरूरत पड़ी तो हम मस्तिष्क के इमेजेज की खास कैमरे से रेकॉर्डिंग भी करेंगे।... मेरी बातों को सुनकर आप जरूरत से ज्यादा परेशान तो नहीं हो रहे? हो सकता है कि इस सारी पड़ताल का कोई नतीजा न निकले, लेकिन...”

मैं कुछ भी कहने के स्थान पर हल्के से मुसकरा दिया। तय यह पाया गया कि डॉक्टर परिहार अगले

दिन मेरे मस्तिष्क का एक और एम आर आई निकालेंगे ताकि स्थिति कुछ और स्पष्ट हो सके।

डॉक्टर के यहां से लौटते हुए दो-तीन बार प्रोफेसर वर्मा से मेरी झड़प होते-होते बची। डॉक्टर ने मुझे नई दवाइयां खाने के लिए दी थी। इनमें एक जवान पर रखने वाली दवा भी थी जिसके स्पर्श मात्र से दिमाग का दबाव कम होने लगता था। इसके अलावा रात में सोने से पहले खाने वाली नींद की गोली थी, जिसे खाने के बाद भी मैं देर तक नींद से घबराता रहा कि नींद के झपकते ही कहीं मुझे कल रात वाला सपना न दिखाई देने लगे। लेकिन छोटी-मोटी खटपट के अलावा मैंने सारी रात लगभग शांति से गुजारी।

अगले दिन हम समय से कुछ पहले ही अस्पताल पहुंच गए थे। डॉक्टर परिहार एम आर आई के कमरे में दाखिल होने से पहले मेरे ठीक सामने बैठकर मुझसे कुछ सवाल करने लगे। “जहां तक मैं समझ सका हूँ, आपका हृदय बिल्कुल ठीकठाक और स्वस्थ काम कर रहा है। आपके खानपान एवं दिनचर्या में भी कोई खास गड़बड़ी नहीं है।... फिर भी आपको मस्तिष्क का यह दौरा पड़ा।... क्या आपको इसकी कोई वजह समझ में आती है?”

मैं कुछ भी उत्तर देने की जगह फर्श की ओर देखता रह गया। डॉक्टर परिहार बहुत गौर के साथ मेरे चेहरे का हर भाव पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। “क्या मैं आपकी व्यक्तिगत जिंदगी के बारे में कुछ सवाल कर सकता हूँ?... भाई और भाभी के अतिरिक्त आपके परिवार में और कौन है?”

“दो बच्चे हैं, विदेश में!”

“और पत्नी?”

“हमारे बीच शत्रुता के सिवाए कुछ बाकी नहीं बचा!”

“कैसे?”

“उसकी किसी महिला से अंतरंगता थी। फिर बाद में दोनों में टन गयी तो उसे लगना शुरू हुआ कि उस महिला के साथ मेरे संबंध हैं। मैंने समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन वह हम दोनों को सार्वजनिक रूप से जोड़कर बदनाम करने पर उतारू हो चुकी थी। उसने पहले खबर उड़ाई कि मैं अपना मकान उस महिला के नाम पर करने वाला हूँ। फिर गुमनाम चिट्ठियों और फर्जी टेपों का नंबर आया। यानी आपकी भाषा में कहें तो एक अच्छा खासा ओथेलो सिनड्रोम हमारी समूची वैवाहिक जिंदगी पर व्याप्त होता चला गया। कुछ वक्त के बाद उसका जुनून इतना बढ़ गया कि मेरी व्यक्तिगत स्वतंत्र ज़मीन, मेरी खुशी, मेरी सांस लेने की स्पेस तक उसके लिए बर्दाश्त से बाहर होने लगी। उस पर मज़ाक यह था कि मेरी दी हुई तमाम सुविधाओं के बूते पर वह समाज में स्त्री मुक्ति आंदोलन की अगुआ थी। मेरी जगह कोई और होता तो शायद अब तक विक्षिप्त हो गया होता। स्थिति यह थी कि हर रोज़ घर लौटने पर एक नया नाटक और उससे जुड़ा तनाव मेरा इंतज़ार कर रहा होता। दरअसल वह चाहती थी कि मैं परेशान होकर अपनी जिंदगी भर की कमाई से खड़ा किया घर छोड़ दूँ। और मुझे मस्तिष्क के दौरों की ओर धकेलकर वह इस मकसद में कामयाब भी हुई। जो कुछ मेरे साथ हो रहा था, अब मैं उसका प्रतिरोध करने के काबिल भी नहीं रह गया था। डॉक्टर ने दौरों के बाद दो टूक शब्दों में मुझसे कहा कि इस नर्क से निकलो, वर्ना जिंदगी के ज़्यादा दिन नहीं देखोगे। दुनिया के जितने लोग तुम्हारी जिंदगी में तनाव पैदा करने के अपराधी हैं, उन सबसे दूर रहने में ही तुम्हारी भलाई है। शेष जीवन शांति से अकेले बिताने की आस मुझमें अब तक बाकी है।... लेकिन उनके नुमाइंदा यहां भी आ पहुंचे हैं, मुझे इंसान से हैवान में तब्दील करने की इस गहरी साजिश के तहत। मैं अब भी अपनी जिंदगी से टूटा नहीं हूँ। लेकिन आपको मुझे इस ताज़ा हादसे से बचाना होगा। अगर मैं हार

गया डॉक्टर, तो इस हार में कहीं आप सब लोगों की हार भी शामिल होगी...बस...”

मेरी आंखें फिर से संवेदना से भर आयी थी। नज़र उठाकर बाहर देखा तो तकनीकी ऑपरेटर काफी देर से कमरे के दरवाज़े पर खड़ा हमारे एम आर आई कक्ष में जाने का इंतज़ार कर रहा था।

लेकिन उठने से पहले डॉक्टर परिहार ने मेरी बीमारी के बाद की हर घटना के बारे में भी विस्तार से पूछा। यहां तक कि वे काफी देर तक मेरे सपनों से भी उलझे रहे और मैं जितनी देर बोलता रहा, उतनी देर वे अपनी डायरी में कुछ नोट भी करते रहे। फिर अपनी आंखों को छोटा करते हुए उन्होंने कहा कि मैं आपकी स्थिति समझ सकता हूँ, लेकिन आपकी व्यक्तिगत जिंदगी और बीमारी के बाद के आपके अनुभवों के बीच कोई अंतरसूत्र हो, यह ज़रूरी नहीं है। बहरहाल, अब हमें चलना चाहिए, वर्ना हमारी एम आर आई के परीक्षण की बुकिंग का समय निकल जाएगा...

बाद में अपने वादे के अनुसार डॉक्टर परिहार एम आर आई परीक्षण के दौरान ऑपरेटर के साथ बैठकर कक्ष में दिखाई देते मेरे मस्तिष्क का बहुत करीब से मुआयना करते रहे। पिछली बार के तर्जुबे से अलग इस बार मुझे परीक्षण के दौरान किसी भी असामान्य अहसास का अनुभव नहीं हुआ। लेकिन न जाने क्यों, इस बार परीक्षण बहुत देर तक लगातार चलता रहा, यहां तक कि अंत तक आते-आते मुझे कुछ ऊब सी महसूस होने लगी। शाम के वक्त जब रिपोर्ट लेने के लिए मैं प्रोफेसर वर्मा के साथ अस्पताल पहुंचा तो डॉक्टर परिहार कुछ बेचैन सी मुद्रा में गलियारे में टहलते हुए दिखाई दिए। मुझे देखते ही वे ठिठके, गोया कि बाहर वे हमारा ही इंतज़ार कर रहे हों। फिर वे हमें भीतर ले गए और कुछ भी कहने से पहले उन्होंने दरवाज़ा भीतर से बंद कर दिया।

“मैंने परीक्षण कक्ष में बैठकर अपनी स्वयं की देखरेख में आपका ताज़ा एम आर आई करवाया है, कई कोणों से और यथासंभव विस्तार के साथ। जैसा कि मेरा अनुमान था, आपके मस्तिष्क में आगे की ओर मांसपेशियों की बुनावट लगातार बदल रही है। इनके भीतर जैसे कोई जीवंत सी चीज़ अटकी हुई है। मैंने पांच सैकेंड के स्कैनिंग से इसका जायज़ा लिया तो यह स्नायु में एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलती हुई दिखाई दी। जैसा कि मैंने पहले कहा, यह कोई गांठ या ट्यूमर नहीं है, क्योंकि ट्यूमर बिल्कुल जड़ और 'बेनाइन' होता है। लेकिन यह अपना आकार और स्थान, दोनों बदल रहा है। यही नहीं, इसमें सक्रिय करेंट और चुंबक किरणें हैं जो हमारे परीक्षण की मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स से टकराती रही। यानी इस हिस्से को कहीं बाहर से शक्ति अथवा संकेत मिल रहा लगता है। जाहिर है कि यह सब बेहद अजीब और असामान्य है और मुझे इस तरह के अनुभव का कोई तर्जुबा भी नहीं है। यूं भी हम अब तक मस्तिष्क के बारे में बेहद कम जानते हैं। हम अपनी सांस से जितनी ऑक्सीजन भीतर खींचते हैं, उसका एक बड़ा हिस्सा दिमाग के हिस्से में आता है। यहां कुछ क्षणों के लिए भी ऑक्सीजन न मिले तो मृत्यु अवश्यभावी है। ऐसे वातावरण में किसी बाहरी जीवित वस्तु का प्रवेश एवं ठहराव कैसे संभव हो सकता है? ...लेकिन आपके मस्तिष्क के चित्रों से इसी असंभव स्थिति के संकेत मिल रहे हैं और मेरे लिए तय कर पाना मुश्किल है कि...”

“तब फिर आगे का रास्ता क्या है?”

डॉक्टर परिहार कुछ क्षणों के लिए गहरी सोच में पड़ गए। “देखिए, मैंने काफी गंभीरता से इसके बारे में विचार किया है। आप यकीन नहीं करेंगे, लेकिन आज सुबह कई घंटों तक मैं इंटरनेट पर इस सवाल का कोई हल ढूंढता रहा हूँ। दरअसल मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि अपने पिछले पैंतीस वर्षों के अनुभव में मैं पहली बार इस तरह की समस्या से मुखातिब हो रहा हूँ। ...एक रास्ता यह है कि मैं चिकित्सा जगत की एक पहेली के रूप में इस केस को आगे अपने वरिष्ठ डॉक्टरों को सौंप दूँ। लेकिन इससे

आपको कोई फायदा होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वर्तमान जानकारी पर खींचतान करने के बाद वे लोग आपको चिकित्सा जगत का कोई अजूबा मानकर आपका केस किसी मनोचिकित्सक के हाथ सौंप देंगे। मुझे शुरू से ही पूरा विश्वास हो चुका है कि आप एक असामान्य व्यक्ति नहीं हैं और कुछ बाहरी शक्तियाँ बहुत सायास ढंग से आपके शरीर पर काम कर रही हैं, जिसकी वजह से आपके विचारों और आपकी सोच में एक खास तरह का बदलाव लाने की कोशिश की जा रही है। शायद हम क्लासिकल चिकित्सा विद्या के दायरे से बाहर किसी नयी संभावना के कगार पर खड़े हैं...”

डॉक्टर परिहार ने मेरे सारे परीक्षणों के कागजों और एम आर आई की ताज़ा तस्वीरों को सावधानी से एक बड़े लिफाफे में डालकर मुझे सौंप दिया। “आपकी पूरी हिस्ट्री एक दूसरे कागज़ात मैंने यहां रख दिए हैं। मैं आपको सिर्फ एक ही मशविरा देना चाहूंगा। आप सामान्य डॉक्टरों की सलाह से भरसक बचें। मैंने इस लिफाफे में जर्मनी के विख्यात न्यूरोसर्जन डॉक्टर बुर्नेज़ के नाम एक पत्र लिखकर दिया है। वे पिछले एक साल से भारत में हैं और मस्तिष्क की एक अत्यंत गोपनीय रिसर्च प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं। उनका पता भी इस लिफाफे में है। मेरी सलाह है कि आप जितनी जल्दी हो सके, उनसे मिलें। संभव है कि वे आपकी कोई मदद कर सकें...”

डॉक्टर परिहार ने बहुत ज़िद के बावजूद मशविरा और उन परीक्षणों की कोई फीस मुझसे नहीं ली। जाते-जाते वे हंसकर बोले कि आप अपने हालचाल मुझे बतलाते रहिएगा, यही मेरी फीस होगी। हम लोग चलने को हुए तो उन्होंने फिर मुझे एक मिनट के लिए रोक लिया। “देखिए, ये दवा जो मैं आपको लिख रहा हूँ, इसे आप हमेशा अपने पास रखें। यह आपके मर्ज़ का इलाज तो नहीं है, लेकिन जब भी आपको बाहर के किसी व्यक्ति को लेकर झुंझलाहट या अपने स्वभाव के विपरीत कोई अहसास लगे तो इसकी एक टेबलेट खा लें। इससे कुछ हद तक अस्थायी रूप से आपके भीतर की शिद्दत काफी कम हो जाएगी...”

मेरे पास डॉक्टर परिहार का धन्यवाद करने के लिए शब्द नहीं थे। हम उठकर बाहर निकले तो प्रोफेसर वर्मा ने अजीब अपनेपन से मेरे कंधे पर हाथ रख लिया। शायद उन्हें लग रहा होगा कि उनकी बिरादरी से एक सदस्य के कम होने की संभावना अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है...

\* \* \*

जर्मन बुर्नेज़ की प्रयोगशाला सुदूर रुद्रपुर के नज़दीक पंतनगर के कृषि विश्वविद्यालय के कैम्पस में स्थित थी। वहां तक पहुंचने में थोड़ी दिक्कत पेश आयी क्योंकि प्रोफेसर वर्मा के लिए अपने कॉलेज से छुट्टी ले सकना मुमकिन नहीं था और भाभी मुझे अकेले छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। भाई के लिए भी अपना दफ्तर छोड़कर मेरे साथ आना संभव नहीं था। यूँ भी मैं किसी को परेशान नहीं करना चाहता था क्योंकि मुझे स्वयं मालूम नहीं था कि वहां कितना वक्त गुज़ारना होगा। लिहाज़ा काफी जद्दोज़ेहद के बाद मैं आखिरकार अकेला ही घर से निकला। भाभी को सबसे चिंता इस बात की थी कि मैं रास्ते में किसी से उलझ न जाऊँ।

बस से सफर करते हुए रास्ते में गढ़-गुप्तेश्वर में गंगा के तट स्नान करने वाले श्रद्धालुओं के चलते रास्ता पूरी तरह बंद हो गया था। रुकी हुई बस से नीचे उतरने के बाद मेरे मन में यूँ ही उस मंदिर को देखने की इच्छा हुई और मैं ट्रैफिक में रुकी हुई गाड़ियों के बीच से होता हुआ सड़क के दूसरे मंदिर के अहाते में आ गया जहां हज़ारों की भीड़ जमा थी। एक घाघ पंडित ने मेरे माथे पर तिलक लगाकर बहुत आसानी से मुझे गंगा-स्नान के लिए भी राज़ी कर लिया और इस सारे अनुष्ठान को पूरा करने के लिए पांच सौ रुपये की रकम भी मुझसे झटक ली। गंगा में डुबकी लगाते समय मेरी दोनों आंखों से बेतहाशा आंसू बह रहे थे। पता नहीं मेरे भीतर यह किस बात का दुख लरज रहा था।

तभी मेरी नज़र गंगा के तट पर पड़ी अपनी पेंट पर गयी तो देखा, कोई उचक्का उसमें से बटुआ निकालकर भागने की कोशिश कर रहा था। पता नहीं उस वक्त कैसा जुनून मुझपर सवार हुआ कि मैं बिजली की सी शक्ति से उसके पीछे दौड़ा और आनन-फानन में उस जेबकतरे को गर्दन से पकड़कर मैंने उसके सिर को बेरहमी से धुनना शुरू कर दिया। अगर कुछ बीच-बचाव करने वाले मुझे न रोकते तो शायद मैं उसे जान से ही मार डालता, क्योंकि मेरे जेहन में उसे खत्म कर डालने का पक्का इरादा पूरी तरह घर कर चुका था। ऐन मौके पर पता नहीं कैसे मुझे डॉक्टर परिहार की गोलियों का स्मरण हो आया और एक खंभे का सहारा लेकर मैंने दो गलियां जल्दी से सटक ली और फिर उनके असर का इंतज़ार करने लगा। उनमें पता नहीं कोई असर था भी या नहीं, लेकिन दस-बारह क्षणों के उस इंतज़ार ने एक तरह से मुझे बचा लिया और मैं अपनी संगीन दुनिया से वापस अपनी हकीकत में लौट आया। जेबकतरा तब तक भीड़ के हवाले किया जा चुका था। मैं थके कदमों से पलटा और चुपचाप चलता हुआ वापस बस में अपनी सीट पर बैठ गया। मेरी आंखों के सामने अब उस दवा का खुमार रह-रहकर लहरें पैदा करने लगा था। इसी कश्मकश में बस कब चल दी, मुझे पता भी नहीं चला।

बस अड्डे से डॉक्टर बुर्नेज़ की प्रयोगशाला बहुत दूर नहीं थी, लेकिन फिर भी वहां पहुंचने में काफी समय लगा क्योंकि विश्वविद्यालय के भीतर भी ज़्यादा लोगों को उनकी उपस्थिति की जानकारी नहीं थी। जब आखिरकार वहां पहुंचा तो उनके सहयोगी ने डॉक्टर परिहार का लिफाफा मुझसे ले लिया और मुझे बाहर एक बेंच पर इंतज़ार करने के लिए कहा। यह एक ऐसी जगह थी जहां चारों तरफ ऊंचे पेड़ थे, जिनके बीच प्रयोगशाला की इमारत लगभग छिप सी गयी थी।

कोई पौने घंटे के बाद डॉक्टर बुर्नेज़ स्वयं उस इमारत से बाहर आए। उनके हाथों में मेरे दिए गए कागज़ात थे। भीतर पहुंचने के बाद उन्होंने मुझसे एक फार्म भरवाया। यह किसी अस्पताल में भरती होने जैसा रजिस्ट्रेशन कार्ड था, जिसमें बीमारी संबंधी विवरण की जगह कुछ वर्गीकरण कोड दिए हुए थे। इनसे आगे बहुत सारी कानूनी किस्म की जानकारी थी, जिसका कुल निचोड़ यह था कि मैं इस जगह की गोपनीयता को पूरी तरह कायम रखूंगा। साथ ही दायित्व से मुक्त रहने की कुछ कानूनी शर्तें भी थी। कागज़ों पर दस्तखत हो जाने के बाद डॉक्टर बुर्नेज़ मुझे अपने चेंबर में ले गए, जहां मरीज़ के बैठने के लिए आरामकुर्सी थी और वहां कुछ विचित्र से यंत्र भी रक्खे हुए थे।

डॉक्टर बुर्नेज़ ने मेरी केस की सारी जानकारी एवं मेरी एम आर आई रिपोर्ट को बहुत ध्यान से पढ़ा। फिर वे मुस्कुराकर बोले कि डॉक्टर परिहार बहुत अच्छी रिपोर्ट लिखते हैं, मुझे आपसे कुछ खास पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। फिर इसके बाद वे मुझे भीतर अपने चेंबर में ले गए। “आइए, यहां भीतर लेट जाइए। मेरा यह यंत्र एम आर आई का ही परिष्कृत रूप है, लेकिन साधारण एम आर आई से यह दस गुना अधिक शक्तिशाली है। मेरे लिए सबसे पहले आपके मस्तिष्क की वर्तमान स्थिति को जानना बहुत ज़रूरी है।... आप बाहर जो कड़ी सुरक्षा देख रहे हैं, वह अनिवार्य है क्योंकि यह काम ऊंचे स्तर पर भारत और अमरीकी सरकार के सहयोग से बेहद गोपनीय ढंग से किया जा रहा है। फिलहाल मैं इसके पूरा होने तक पत्रकारों को इसका कोई सुराग नहीं देना चाहता। बाहरी दबावों के और भी बहुत से खतरे यहां मौजूद हैं। डॉक्टर परिहार एवं दो एक अन्य लोग इस देश के गिने-चुने डॉक्टरों में से हैं जिन्हें इस शोधकार्य की जानकारी है। लेकिन उन सब ने भी गोपनीयता की शपथ ले रखी है।”

कोई आधे घंटे तक मैं उनके एम आर आई चेंबर के भीतर रहा। आखिरकार उन्होंने स्वयं मेरा हाथ पकड़कर मुझे खड़ा किया और सामने आरामकुर्सी पर बिठाकर बढ़िया निंबूपानी पिलाया। फिर वे मुझसे मेरी शिक्षा के बारे में पूछने लगे। जब उन्हें पता चला कि मैं तकनीकी व्यक्ति हूँ और मुझे कम्प्यूटर की कमोबेश

जानकारी है तो उन्होंने कहा कि तब तो मेरा काम बहुत आसान हो जाएगा।

“देखिए, आपके ताजा एम आर आई को यदि मैं एक सप्ताह पहले वाले परीक्षण से मिलाकर देखूं तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आपके आगे की ओर के हिस्से में काफी गतिविधि है और कहीं बाहर से इस इलाके को सक्रिय करने की कोशिश की जा रही है। यदि हम इस दिमाग की तुलना किसी कंप्यूटर से करें तो हम मान सकते हैं डेटा रखने वाली हार्ड डिस्क की तरह हमारा दिमाग ऊंचे घनत्व वाला ठोस इलाका है, जिसमें हमारे अब तक के तमाम अनुभव किसी डाटा की तरह जमा हैं। यही नहीं, इसके पीछे हिस्से में इस शारीरिक कम्प्यूटर का सी पी यू या गुणा भाग वाला हिस्सा भी मौजूद है। सारी अनुभूतियां, सारे अहसास, तमाम फैसले और नैतिक निर्णय यहीं से प्रोसेस होकर बाहर आते हैं और इन्हीं के अनुसार हमारे शरीर के तमाम अंग काम भी करते हैं, हालांकि हम आज भी नहीं जानते कि इनकी असली प्रक्रिया क्या है और इस हार्ड डिस्क के किसी वर्षों पुराने कोष में छिपा कोई अनुभव कैसे पलक झपकते ही हमारे प्रत्यक्ष या वर्तमान के अनुभव में कार्यान्वित हो जाता है।...”

“आप कंप्यूटर के उन वाइरसों से अच्छी तरह परिचित होंगे जो प्रोसेस का कोड बदलकर या उसमें नया कोड लगाकर आपके कंप्यूटर के सॉफ्टवेयर को मनचाही दिशा में मोड़ देते हैं। इन्हीं के समानांतर इंटरनेट के ज़रिए किसी सुदूर स्थान से कंप्यूटर डकैत या ताला तोड़ने वाले ‘हैकर’ कैसे अपनी कुंजी लगाकर बड़े-से-बड़ा कंप्यूटर खोलने में सफल हो जाते हैं। हमारी मस्तिष्क की सोच और इसकी प्रक्रिया पिछले हजारों सालों से एक अनबूझ पहेली बनी हुई है। ... लेकिन मुझे लगता है कि हममें से कुछ लोग न सिर्फ मस्तिष्क की इस जटिल प्रक्रिया की कुंजी खोलने में कामयाब हो गए हैं, बल्कि इससे भी एक कदम आगे, उन्होंने इस अज्ञात प्रक्रिया में फेरबदल करने का रास्ता भी ढूंढ निकाला है। मुझे नहीं पता कि ये लोग कौन हैं, लेकिन यह तथ्य है कि इन सब लोगों की सोच एक जैसी है। ये सब सांप्रदायिकता और हिंसा के द्वारा दुनिया में दहशत फैलाने में यकीन रखते हैं और इन्होंने ऐसा करने का सबसे कारगर तरीका यानी मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया को मनचाहे ढंग से परिवर्तित करने का रास्ता अपनाना शुरू कर दिया है। दिमागी मलेरिया बुखार के वाइरस जिस तरह आपके दिमाग के सूक्ष्म कोषों में घुसकर उसे खोखला और रोगी बना देते हैं, कुछ उसी तरह ये हमलावर आपके दिमाग में उसी तरह का परजीवी वाइरस या पैरासाइट स्थापित करने में कामयाब हो गए हैं। फर्क इतना है कि यह वाइरस बीमारी के कीटाणुओं की तरह सूक्ष्म नहीं बल्कि आकार में इनसे काफी बड़ा और स्थूल है। इतना बड़ा कि हम इसे एम आर आई के ज़रिए न सिर्फ देख सकते हैं, बल्कि इसका एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक चलना भी महसूस कर सकते हैं। आप सोचिए कि इस कमरे में कहीं अगर हम छोटा सा कैमरा छिपा दें तो उस कमरे के सारे रहस्य उसकी तस्वीरों के ज़रिए क्या हमारी आंखों के सामने साफ नहीं हो जाएंगे? कुछ इसी अंदाज़ में दिमाग के ये ‘हैकर’ न सिर्फ आपकी सोच के एक-एक रेशे को उघाड़ने में कामयाब हो गए हैं, बल्कि आपके जाने बगैर आपके दिमाग को ये अपनी मनचाही दिशा में मोड़ने में भी सफल हो गए हैं। इसका केस इस मायने में थोड़ा सा अलग है कि आप लगातार अपने पूरे होशो-हवास में थे और आपको समय-समय पर इनकी गतिविधियों के संकेत भी मिलते रहे। ये आपके शरीर में माइक्रोवेव किस्म की कम दूरी वाली तरंगों के ज़रिए प्रवेश करते हैं और अपने शिकार के पास तक पहुंचने के लिए ये बिजली की तारों के नेटवर्क में भी यात्रा कर सकते हैं। आप जब बीमार थे और जब आपका मस्तिष्क अपने सबसे कमज़ोर क्षणों में था, तब इन्हें आपके मस्तिष्क में प्रवेश का सबसे सुविधाजनक वक्त मिल गया।”

मैं जानना चाहता था कि मेरे दुखद व्यक्तिगत अनुभवों का, जिनकी वजह से मुझे मस्तिष्क का दौरा पड़ा था, इस हादसे में भी कोई योगदान था? “यह कह पाना हमारे लिए ज़रा मुश्किल है। लेकिन इतना तथ्य

है कि आपकी तनाव भरी परिस्थितियां इस हमले के लिए बेहद अनुकूल थीं। और आपके साथ जो कुछ हुआ उसे अंजाम देने वालों और दूर से जाने-अंजाने में सहयोग देने वालों की भी एक पूरी जमात इस षडयंत्र में शामिल रही होगी, ऐसा मुझे लगता है। ये लोग कौन हैं और उनके इस अपराधी तंत्र के हिस्सेदार कहां-कहां मौजूद हैं, यह तो शायद आने वाला समय ही निर्धारित कर जाएगा... लेकिन इतना तय है कि किसी भी हादसे में सीधे हिस्सा लेने वालों के अलावा परोक्ष रूप से आपका मनोबल तोड़ने वाले मौकापरस्तों का भी भरपूर हाथ रहता है।... मेरे यहूदी पिता पूर्वी जर्मनी के मशहूर हृदय सर्जन थे और अपने जीवनकाल में उन्होंने अपने कुशल हाथों से पता नहीं कितने जर्मनों की जान बचायी होगी। लेकिन वक्त आने पर उन्हीं में से कुछ कायर लोगों ने उन्हें राइमर की नाज़ी फौज के हवाले कर दिया और वे सब लोगों की नज़रों के सामने कुत्ते की तरह दौड़ा-दौड़ाकर मार डाले गए... नाज़ी फौज के आततायियों के मुकाबले इन ऊंची नस्ल वाले जर्मनी की पक्षपाती निष्क्रिय भीड़ का भयानक अपराध क्या सिपाहियों के मुकाबले कमतर ठहरेगा? क्या इसे कभी भी माफ किया जा सकेगा...?"

उनकी बातें सुनकर मेरी आंखों में आंसू उमड़ आए। डॉक्टर बुर्नेज़ का दर्दनाक यहूदी इतिहास मेरी अपनी कहानी पर भी किसी साए की तरह हावी था। मेरी अपनी त्रासदी में भी सबसे ज्यादा नुकसान उन राह चलते तमाशबीनों ने किया था जिनका इस हादसे से कोई लेना-देना नहीं था और जो 'मैं कौन, मैं खामख्वाह!' वाले अंदाज़ में नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले स्वघोषित नुमाइंदे बन बैठे थे...

डॉक्टर बुर्नेज़ पिछले दो वर्षों से इस क्षेत्र में सक्रिय थे। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क के इस अजीबोगरीब वाइरस का इतिहास भी लगभग इतना ही पुराना था। मैं जानना चाहता था कि इस हादसे का शिकार होने वाला मैं अकेला व्यक्ति था, या कि मेरी तरह और भी लोग थे जो मेरी तरह वैचारिक पक्षाघात का शिकार हुए थे। मेरे सवाल के जवाब में डॉक्टर बुर्नेज़ पिछले दरवाजे से होते हुए मुझे इमारत के भीतरी हिस्से में ले गए थे। यह एक अस्पताल का वार्ड था जहां तीस-चालीस मरीज़ बिस्तरों पर लेटे हुए थे। मेरे खयाल में ये सारे लोग भी मुझ जैसे ही थे, मेरी ही तरह किसी आरोपित विनाशकारी बुद्धि से चालित। मेरी ओर देखते हुए उन सबकी आंखों में एक चमक सी उभर आयी थी। फर्क सिर्फ इतना था, डॉक्टर बुर्नेज़ ने बताया था, कि हादसे के समय मैं अपने पूरे होशो-हवास में था, जब कि ये सब एक ऐसी नौद में गाफिल थे कि इन्हें अपने अंदरूनी हमले का पता भी नहीं चला था। "एक तरह से इन लोगों की स्थिति आपके मुकाबले ज्यादा खतरनाक है क्योंकि ये वैचारिक स्तर पर अपने-आपसे लड़ने की भी स्थिति में नहीं हैं। बल्कि ये अपने खुद के और दूसरों के आरोपित विचारों में फर्क तक नहीं कर सकते। इनके मस्तिष्क से जो कुछ कहलवाया जाता है, उस पर ये सच्चे दिल से यकीन कर लेते हैं और प्रकारांतर में यही उनकी अपनी विचारधारा बन जाती है। मेरे खयाल से हमारी इस नियंत्रण सीमा से बाहर इस विश्व में कई हजार लोग इस भयानक वाइरस का शिकार हो चुके हैं। कल्पना कीजिए, महामारी की तरह एक व्यापक अभियान है जिसके जरिए एक ही तरह के हिंसक, कट्टर और सांप्रदायिक लोगों की पूरी भीड़ इस दुनिया में तैयार हो रही है। आने वाले दिनों में अगर ये लोग इस धरती की बागडोर अपने हाथ में लेने में कामयाब हो गए तो फिर सोचिए, किस तरह की अपराधी और क्रूर दुनिया छोड़कर जाएंगे हम अपने उत्तराधिकारियों के लिए..."

डॉक्टर बुर्नेज़ की बातें सुनकर मेरा दिमाग चक्कर खाने लगा था। "क्या इस विनाश से बचने का कोई रास्ता हमारे विज्ञान के पास नहीं है?" मेरी हताशा को महसूस करते हुए डॉक्टर बुर्नेज़ बहुत धैर्य के साथ धीरे-धीरे मुसकराए। "मुझे पूरा विश्वास है कि अगले दस-बारह महीनों में हम दिमागी आरोपण की इस प्रक्रिया की तह तक पहुंचने में कामयाब हो जाएंगे। ...फिलहाल इस प्रयोगशाला के पूरे परिसर को परजीवी वाइरस के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त कर लिया गया है। यहां दिन के समय खास तरह की इलेक्ट्रोमैग्नेटिक

तरंगों का प्रभाव रहता है और रात के समय हम सभी प्रभावित सदस्य को प्रतिरोधी हेडफोन लगाकर सोने की सलाह देते हैं। इन्हें लगा लेने के बाद मस्तिष्क बाहर के किसी भी प्रभाव से मुक्त हो जाता है।”

“क्या बचाव से आगे हम इसके प्रतिरोध का भी कोई रास्ता हो सकता है?”

“यह रास्ता हमें पुरानी दकियानूसी समझ और आज के आधुनिक आई टी विज्ञान के समन्वय से ही हासिल होगा शायद...”

“दकियानूसी समझ?”

“यानी हमारा क्लासिकल भौतिकशास्त्र का ज्ञान! हमने महसूस किया है कि कुछ प्राकृतिक पीजोमेट्रिक किस्म के पत्थरों के प्रभाव से इस वाइरस के प्रभाव को खींचकर बाहर निकाला जा सकता है। इस तरह के पत्थरों का डाइइलेक्ट्रिक गुण बहुत अधिक होता है और इसकी मदद से मस्तिष्क की गांठों का सारा विषैला पदार्थ किसी स्याही-सोखे की तरह खींचा जा सकता है... ताज्जुब यह है कि इस तरह के जादुई पत्थरों की जानकारी मुगल जमाने के कुछ सूफियों को भी थी। और वे इसकी मदद से सांप और बिच्छू के जहर को शरीर से खींच निकालते थे।...”

“‘आईना-ए-अकबरी’ में तेहरान से लाए गए इसी तरह के जादुई पत्थर ‘जहर-मोहरा’ का जिक्र कई बार आता है।... मैं खुद जहर-मोहरे की तलाश में छः महीने तक दिल्ली की गलियों की झक मारता रहा। किसी जानकार ने खबर दी थी कि जामा मस्जिद के एक सूफी के पास इसका एक टुकड़ा परदादाओं के जमाने से सुरक्षित है।... लेकिन वह शख्स मुझे मिला नहीं...”

इसके कई महीनों बाद डॉक्टर बुर्नेज़ की तरह मैं भी उसी जहर-मोहरे की तलाश में दिल्ली के पता नहीं किन-किन मुहल्लों के दरवाजे खटखटाने वाला था। मगर बहुत खोजने के बाद भी आईना-ए-अकबरी का वह जहर-मोहरा किसी के पास नहीं मिल पाया था।... लेकिन यह आगे का किस्सा है। फिलहाल तो मैं डॉक्टर बुर्नेज़ के साथ उनके पंतनगर के गुप्त नर्सिंग होम में था, कुर्सी पर निढाल, शाम के ढलने का इंतज़ार करता हुआ...

डॉक्टर बुर्नेज़ ने सूचना दी कि रात में सोने से पहले मुझे कोनों पर प्रतिरोधी हेडफोन लगा लेने होंगे। मुझे इस पर कोई ऐतराज़ नहीं था, लेकिन बिस्तर पर बैठकर हेडफोन लगाते ही मेरे दिमाग में अजीब तरह के विचार उगने शुरू हो गए जो हकीकत और ख्वाब के बीच की कोई चीज़ मालूम होते थे। मैं मेसोपोटामिया और बेबीलोन के मैदानों में पता नहीं किस चीज़ की तलाश में भटक रहा था। फिर उसके बाद मुझे नींद आ गयी और मैंने पाया कि मैं ईरान के खुफिया परमाणु ठिकानों तक पहुंच गया हूँ। कोई मुझे टेलिविजन पर वक्तव्य देने के लिए कह रहा था और मैं ओसामा बिन लादेन को फांसी का हुक्म देने की गुजारिश कर रहा था। फिर उसके बाद अचानक मैंने अपने-आपको बगदाद की सड़कों पर अमरीकी फौजों के कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ते हुए पाया। एक झटके के साथ रात के सत्राटे में मेरी नींद टूटी तो मेरा समूचा जिस्म पसीने से तर-ब-तर था। कुछ ही क्षण पहले मेरी आंखों के सामने एक फिलिस्तीन बच्चे को इस्त्राइलियों ने गाज़ा स्ट्रिप इलाके में घेरकर बेरहमी से मार डाला था और वे सब मुसकराते हुए कह रहे थे कि इसका असली खून मेरी आस्तीन पर था, मेरे ही नाम...

मैंने घबराकर रात के सत्राटे में चिल्लाने की कोशिश की लेकिन उस कमरे में मेरी आवाज़ को सुनने वाला कोई नहीं था। पता नहीं कितनी देर तक मैं बेचैनी से इस करवट से उस करवट बदलता रहा। लेकिन मेरे कानों में अब भी भयानक आवाज़ें आती जा रही थी। मुझे लगा कि डॉक्टर बुर्नेज़ का वह हेडफोन

बिल्कुल बेअसर है। आखिरकार तंग आकर मैंने उस हेडफोन को कानों से उतार फेंका और फिर न जाने क्या सोचकर मैंने अपने सामान से वे गोलियां निकाल ली जो डॉक्टर परिहार ने चलने से पहले मुझे दी थी। गोलियां खाने के कुछ ही देर में मेरे गिर्द सबकुछ बिल्कुल शांत हो गया और मुझे लगा कि अब मैं फिर से कुछ देर के लिए नींद में डूबने का खतरा उठा सकता हूँ। कुछ अंतराल के बाद जब मेरी नींद खुली तो बाहर मैदान में सुबह होने को थी और खिड़की के बाहर कोई पक्षी बेहद सुरीली आवाज़ में कुछ गा रहा था... मुझे पता चला कि हेडफोन उतार लेने के बाद उन गोलियों के सहारे मैं कई घंटों की बेफिक्र नींद लेने में कामयाब हो गया था...

\* \* \*

...नर्सिंग होम के वे अगले चार-पांच दिन मैंने काफी उलझन में गुज़ारे। डॉक्टर बुर्नेज़ बेहद आत्मीय और समझदार व्यक्ति थे। लेकिन कभी-कभी उनका रवैया मुझे बेहद सख्त और असंवेदनशील नज़र आता। खास तौर पर अपने मरीजों के साथ पेश आते हुए वे किसी तरह की रियायत नहीं छोड़ते थे। यही नहीं, परेशानी की स्थिति में वे मरीजों को दिन में भी हेडफोन लेकर घूमने की सलाह देते थे। मैंने पाया कि उनके नर्सिंग होम के सभी मरीज़ लगभग एक ही तरह से सोचते और जिरह करते थे। खाने पर एक दिन जब मैंने किसी राजनीतिक गपशप के दौरान इराक पर अमरीका के हमले की कड़ी आलोचना की तो कोई एक दर्जन लोग बेहद उग्र अंदाज़ में मुझ पर पिल पड़े। वे सब अमरीका की नीतियों के समर्थक थे। वे इराक और फिलिस्तीन से नफरत करते थे। वे इसके अतिरिक्त किसी भी दूसरी विचारधारा के खिलाफ थे।

और तब, एक दिन अचानक, मुझ पर जैसे बिजली सी गिरी। मुझे समझ में आया कि डॉक्टर बुर्नेज़ स्वयं बहुत स्वतंत्र विचारों के कायल नहीं थे। यह इत्तफाक नहीं था कि हेडफोन लगाते ही दिमाग में एक खास तरह के सपने उभरने लगते थे। वे सारे सपने बहुत सोच-समझ कर वहां रक्खे गए थे। उनका उद्देश्य हिंसा और सांप्रदायिक विचारों को प्रत्यारोपण का मुकाबला करने के साथ-साथ एक खास तरह की समझ और विचारधारा को विकसित करना भी था और मेरे लिए तय कर पाना काफी मुश्किल था कि इन दोनों में से कौनसा उद्देश्य उनके लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण था। वे दिमाग में एक ज़हर को हटाने के नाम पर एक दूसरी आग्रहपूर्ण सोच को वहां लगातार स्थिर करते चले जा रहे थे। और इसमें कोई संदेह नहीं कि एक अंतराल के बाद उस तथाकथित हिंसक, कट्टर और सांप्रदायिक लोगों की पूरी भीड़ केस्थान पर वहां एक दूसरे मगर उतने ही आग्रहपूर्ण और डरावने जनसमूह का निर्माण होने वाला था, डॉक्टर बुर्नेज़ जैसे नफीस यहूदी प्रतिनिधियों और प्रतिक्रांतिकारियों की सोच को बढ़ावा देने वालों की बदौलत...

सारा दिन इस स्थिति की भयावहता से जूझने के बाद उस रात हेडफोन लगाने का समय हो जाने के बाद मैंने सारे खतरों के बावजूद उस जगह से भाग निकलने का फैसला कर लिया। उस जगह का गुलाम बनकर जीना एक तरह से अपनी समूची लड़ाई को दूसरों के हाथ में सौंप देने से कम कायरता भरा काम नहीं होता। वहां से निकलने का अभियान उतना मुश्किल नहीं निकला जितना मैंने सोचा था और कांटेदार तार की दो-चार खरोंचो को झेलकर आखिरकार रात ग्यारह बजे के आसपास मैंने अपने-आपको दिल्ली की ओर जाने वाले बस अड्डे के करीब खड़ा पाया...

मेरे सामने स्पष्ट नहीं था कि मैं आगे उन लोगों के साथ मुकाबला कैसे करूंगा जिन्होंने मेरे दिमाग को ही दांव पर लगा दिया था। देखा जाए तो मेरी लड़ाई अपने अक्षम शरीर के साथ-साथ अपने बागी मस्तिष्क से थी, जहां हिंसा एवं घृणा का एक खुला निमंत्रण मेरे पांसा पलटने का इंतज़ार कर रहा था। लेकिन मैंने जान लिया था कि डॉक्टर परिहार की दी हुई गोलियां मुझे किसी भी संगीन स्थिति से उबारने में कारगर साबित

हो सकती थी। मुझे लगा कि आने वाले दिनों में डॉक्टर परिहार जैसा ही कोई व्यक्ति हमें इस महामारी से मुक्ति का रास्ता भी दिखा सकता है।

... मैं वहां से निकलकर पता नहीं कितने दिनों तक जुनून की सी शारीरिक हालत में नग फरोख्त करने वालों, सूफियों और जोगियों के बीच दर-दर भटका, लेकिन जहर-मोहरा या उससे आसपास की किसी चीज़ से भी मेरा साबका नहीं पड़ा। एक सूफी ने धोखा देकर तीन हजार में एक पत्थर मुझे बेच भी डाला, लेकिन यह सब वहम, ढकोसला और छल था, जिसका मेरे दिमाग की स्थिति से दूर का भी रिश्ता नहीं था।

जादुई पत्थर के सिलसिले में किसी ने सुदूर मुक्तेश्वर की पहाड़ियों में रहने वाले किसी भूरी कमली वाले बाबा का जिक्र किया तो मैं गिरता-पड़ता वहां भी जा पहुंचा। लेकिन वे बाबा उस जगह को छोड़कर कहीं और जा चुके थे।

क्या जहर-मोहरा का वह खयाल महज एक मिथक के सिवाए कुछ नहीं था?

मुक्तेश्वर में सुदूर पहाड़ियों पर कोहरा था और धीमी धीमी बरसात लगातार नीचे गिर रही थी। हवा में एक अजीब सी ठंडक थी और वक्त से पहले ही बादलों की वजह से अंधेरा घिरता चला जा रहा था। बाबा की खाली झोंपड़ी से कुछ आगे मुक्तेश्वर का पुराना मंदिर था जहां तक पहुंचने के लिए कोई ढाई सौ कदम सीढ़ियों पर जाना होता था। अपने मस्तिष्क में कैद उस वज्र को अपने साथ ढोता मैं धीरे-धीरे उन सीढ़ियों पर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता चला गया। मैंने तय कर लिया था कि बस अब और नहीं, यदि मैं इस हादसे से ऊबर नहीं पाता हूं तो यही सही, मैं अपने मस्तिष्क के नासूर को अपने साथ लिए इसी तरह वापस लौट जाऊंगा।

पूरे मंदिर में अभूतपूर्व शांति थी और दूर तक वहां कोई दिखाई नहीं दे रहा था। दस्तूर के मुताबिक मैं चप्पल उतारकर ऊपर चढ़ा तो एक चौबारे के बीचोबीच रस्सी से टंगा एक दीपक वहां वीरानी में जल रहा था। उसके इर्दगिर्द चारों तरफ वृक्षों से घिरे अलग-अलग मंदिर थे। उनमें से एक में एक बूढ़ा, जो शायद सन्यासी था, किसी गहरी तपस्या में डूबा हुआ था। ऊपर एक ऊंचे पेड़ पर पहाड़ी कौओं की कोई मंडली अजीब सी आवाज़ें निकाल रही थी। एक रहस्यमयी सी कंपकंपी मेरे सारे शरीर में व्याप्त हो गयी। दूर-दूर तक तपस्या में लीन उस बूढ़े के सिवाए वहां कोई नहीं था। वह एक विलक्षण शाम थी। पेड़ों से रिसकर टपकता पानी बहुत धीमे, एक निरंतर आवाज़ के साथ भीगी हुई ज़मीन पर गिर रहा था।

सन्यासी ने अचानक आंखें खोल दी और दूर से ही मेरी ओर हवा में आशीर्वाद फेंका। मेरे पास प्रत्युत्तर में उसका अभिवादन स्वीकार करने के सिवाय कोई चारा नहीं रहा।

“क्या खोज रहे हो?” सन्यासी का लरजता हुआ स्वर बेहद स्पष्ट था।

“विष... विष खींचने वाला...”

सन्यासी इतनी दूर से ठिठककर मेरी ओर देखने लगा। “कहां है विष?”

“यहां...” मैं हाथ से अपने सिर की ओर इशारा किया।

“तो फिर छोड़ दो, छोड़ दो उसे भीतर से!... जाने दो!...जाने दो!”

मैं पूरी शिद्दत से उसे बाहर खींचने में मशगूल हो गया था। वह खिंचता गया, खिंचता चला गया। यहां

तक कि कुछ भी शेष नहीं रहा। सन्यासी इस बीच फिर से अपनी समाधि में जा चुका था।

मैंने गौर किया कि देखने में वह बेहद साधारण और मामूली था। डॉक्टर बुर्नेज़ होते तो उसकी पीजोमेट्रिक ताकत या डाईइलेक्ट्रिक शक्ति को नापने की कोशिश करते। मैंने एक बार बहुत एहतियात के साथ उसे अपनी हथेली पर हिला-डुलाकर देखा। फिर शरारती अंदाज़ में एक उंगली से हल्का सा धक्का देकर उसे वापस भीतर लुढ़का दिया।

हालांकि इस बात का कोई मतलब नहीं था, लेकिन मैंने पाया कि जिस फिलिस्तीनी बच्चे की हत्या का झूठा इल्जाम कुछ वक्त पहले मुझ पर लगाया गया था, वह दरअसल मरा नहीं था...

बाहर मंदिर के अहाते में बारिश उसी तरह लगातार धीमे-धीमे गिर रही थी।...

---

जितेन्द्र भाटिया प्रसिद्ध कथाकार, अनुवादक और चिंतक हैं। 'पहल' में उनके धारावाहिक लेखों का पाठक उत्सुकता से इंतजार करते हैं। अगली बार धारावाहिक की नई कड़ी।

## बीज-भोजी

### बीज रक्षा

टोले के उत्तरी छोर पर आखिरी घर देवजी का था। उनके आँगन के पश्चिम-उत्तर केले का जंगल। पूरब बाहरी ओसारे के आगे एक छतनार आम का पेड़ था जो उस हिस्से को दालान का सा रूप देता था।

उस शाम उसी दालान वाले ओसारे के अंधेरे में कहने को पाँच-पाँच जवान-जवान आदमी थे, मगर वे सब इस क्रंदर चुप थे मानो गूँगे हों! सुबह-सुबह उस आँगन से अर्थी तो एक ही निकली थी, देवजी के सात वर्षीय बेटे सुनील कुमार उर्फ मुन्ना की। लेकिन बाक्री भी लाश से ही थे।

मुन्ने का उत्तरीय लिये देवजी के चचेरे भाई बैजू एक तरफ अकेले खूँटे लगाकर पुआल की सेज पर बैठा था। उसके बैठने का ढंग साफ़ जाहिर कर रहा था कि वह ठंड से काँप रहा है। उस सेज से ज़रा हटकर पुआल की वैसी ही दूसरी सेज भी लगी थी। उस पर दीवाल की तरफ मुँह करके देवजी लेटे हुए थे। घुटने मोड़कर उन्होंने इस क्रंदर सटा लिये थे कि वह गठरी की तरह लग रहे थे। उनके बदन पर पुराना कम्बल घिसकर इतना पतला हो गया था कि माघ का जाड़ा काटना कठिन था। लेकिन उन्हें जाड़े का अहसास नहीं हो रहा था शायद! पड़े थे वह बेजान-बेसुध-से थोड़ी सी जगह में तुड़े-मुड़े।...

वहीं, देवजी की पीठ लगे, उनके सटे दक्षिण के पड़ोसी भ्रातृ-द्वय सत्यनारायण और जयनारायण के अलावा सुकेश बैठे थे। तीनों करीब-करीब सटकर बैठे थे। पुआल की उन सेजों के बीच एक अलाव भी जलाया गया था, मगर उसकी आग राख तले दब गई थी। उस दबी आग की ज़रूरत सब को थी, मगर राख हटाकर अंदर कुरेदने की सुध किसी को नहीं थी शायद!

एकदम से मनहूस था वह वक्रत। मुर्दनी-सी थी चुप्पी। उस पर सघन अंधेरा तारी। देवजी को छोड़ बाक्री चारों उस काट-खाने वाले अंधेरे में ख़ुद को बुरी तरह फँसा महसूस कर रहे थे। वे उस अंधेरे को भेदने की ग़रज़ से कुछ बोलना चाहते थे। जैसे आवाज़ में रोशनी का कोई सुराग मिल जाएगा! लेकिन उन्हें कोई उपयुक्त वजह नहीं मिल रही थी।

उसी बीच दो कुत्ते दक्षिण की तरफ से भौंकते हुए आए। भौंकते-भौंकते दोनों कुत्ते अचानक एक

लय में रोने लगे थे। उनके रोने से माहौल और डरावना हो गया था। सहसा अशुभ की चिंता उन चारों के भीतर घुमड़ आई थी।

वैसे देवजी भी जगे हुए थे, लेकिन कुत्ते की वह आवाज़ देवजी के भीतर जा उन पर कोई असर पैदा करने में असमर्थ थी। सूर्यास्त के पहले कर्ता बैजू के साथ उनको भी कुछ खिलाने की कोशिश हुई थी। मगर दो दिन के भूखे होने के बावजूद उन्होंने एक दाना तक ग्रहण नहीं किया। कई लोगों के आग्रह का परिणाम इतना निकला कि उनके भीतर गिलास भर पानी गया था। उसके बाद जो वह लेटे सो करवट भी नहीं ली। पलकें भी नहीं झपकीं थीं जैसे! एकटक अँधेरे में ताकते न जाने किस दुनिया में चले गए थे कि किसी की आवाज़ पर हिलते भी नहीं थे।

कुत्तों का रुदन अभी कुछ ही मिनट चला होगा कि जयनारायण ने तेज़ आवाज़ में कुत्तों को डाँटा। कई बार डाँटने के बावजूद जब कुत्ते चुप नहीं हुए, तो सत्यनारायण की आवाज़ आई, “अरे उठके दो लाठी लगाओ इन हड़शंखों को। अब किसको खाएगा स्साला!...”

“अरे मत मारो! वैसे ही डाँटकर भगा दो।... कुत्ते देवशी होते हैं। बुरे वक्रत की पहचान होती है इनको। ज़रूर कुछ देख रहा होगा वह।...” सुकेश ने ठंडे-बुझे स्वर में कहा और ओढ़ने की चादर ऊपर खींच कान से सिर तक ढक लिया।

“हाँ-हाँ!... मत मारो।” बैजू का सहमा हुआ स्वर आया। कर्ता बनने की मजबूरी पर मन-ही-मन पछता रहा था वह।

“वैसे कुत्ते जाड़े में ज़्यादा भौंकते ही हैं।” जयनारायण का तर्क था।

“धुर्! ऐसा शहरों में होता है जहाँ पूरी धरती सिमेंट-ही-सिमेंट होती। वहाँ इन्हें कहीं गर्म धरती या घास-फूस नहीं मिलती इसलिए...। अभी तो साला किसी अमंगल को न्योत रहा है।” सत्यनारायण ने रूखे स्वर में कहा।

ख़ैर, डाँट-फटकार पर कुत्ते थोड़े दक्षिण की तरफ़ चलते गए। वैसे रह-रहकर भौंक अब भी रहे थे। लेकिन अब उनका रोना बंद हो गया था।

ओसारे पर कुत्ते के बहाने टूटी चुप्पी के बाद उसकी ही चर्चा होने लगी थी। सुकेश जहाँ कुत्ते को भैरव बाबा की उपाधि देते त्रिकालदर्शी बता रहा था, वहीं सत्यनारायण अभी-अभी कुत्ते को दी गई गाली पर मन ही मन पछता रहे थे।

जयनारायण ने सुकेश के कहे अनुसार कुत्तों को डाँटकर ही ज़रूर भगाया था, मगर उन बातों पर उसका कोई यत्नीन नहीं था।

उसको किसी चोर-वोर के घूमने की आशंका हो रही थी। उसके घर में तो वैसे कुछ ले जाने लायक था नहीं। एक बैल को लेकर उसको ज़रूर दहशत हुई। वह तत्काल उठकर बैलवाले घर का मुआयना करने चला गया।

जब तक जयनारायण लौटा, ओसारे पर गेहूँ में पानी देने और दवा-खाद छिड़कने के प्रसंग शुरू हो गए थे। इन प्रसंग की चर्चा मात्र से जयनारायण को अपनी बोडिंग याद हो आई जिसमें चूहों ने मिट्टी भर दी थी और जिसकी सफ़ाई डेढ़ मन धान देकर पिछले सप्ताह ही उसने करवाई थी। बोडिंग तो अब तैयार थी, मगर डीजल के पैसे ही नहीं हो पा रहे थे कि गेहूँ में पानी देता। ऊपर से यूरिया की चिंता थी। उधर गेहूँ की

पौध डटियाती पीली पड़ने लगी थी।

तभी सुकेश कहने लगा, “अरे भाई डीजल इस बार भी ऊपर ही जा रहा है। पेट्रोल पम्प पर रोज़-रोज़ मिलता भी नहीं। यहाँ बाज़ार में चौरौआ प्रति लीटर पाँच रुपए ज़्यादा पर बिक रहा है। यूरिया के प्रति बोरी साठ रुपए उछल गई है।”

“हाँ जी, डीएपी की बोरी नहीं लिए हैं चालीस रुपए तेज़! तभी तो लागत भी नहीं निकलती है गेहूँ की खेती में।” जयनारायण था।

कि सत्यनारायण का घिसा-पिटा अनुभव प्रकट हुआ, “गेहूँ क्या, किसी खेती में लाभ है? सब फसल की हालत उन्नीस-बीस ही है। बस नार-पुआल और भूस का आसरा! फिर एक अनमना कि खेती कर रहे हैं। न तो...” आगे उनसे बोला नहीं गया।

बैजू ने इस साल गेहूँ की खेती छोड़ दी। वह कहीं बाहर जाना चाहता था। अब सप्ताह भर कहीं नहीं जा पाने की स्थिति पर पछताते कुछ बोलना चाह रहा था। उसकी जुबान हिलने भी लगी थी कि उसी क्षण ओसारे के बगल से दो स्त्री-आकृतियाँ गुज़रीं। ओसारे पर बैठे चारों जनों की नज़रें उधर गईं। सहसा जयनारायण बोला, “कौन?”

“हम हैं!” जयनारायण की भाभी कमला ने जवाब दिया। जयनारायण समझ गया कि भाभी के साथ उसकी पत्नी तारा रही होगी। बाक़ी तीनों भी ताड़ गए कि दोनों स्त्रियाँ अपने घर से खाना बनाकर देवजी के आँगन के लिए लायी होंगी।... दाह-कर्म के दिन मृतक के घर पर चूल्हा जो नहीं जलता!...

क्षणभर बाद अंदर के कमरे से स्त्री स्वर प्रकट होने लगा था। कुछेक अस्पष्ट शब्दों के बाद रुदन का स्वर फूटा। देवजी की पत्नी माला का स्वर।

ओसारे पर अचानक चुप्पी व्याप गई थी। इस बीच जयनारायण ने अलाव के ऊपर की राख हटाकर आग जगाने का एक प्रयास किया था। मगर अंदर आग से ज़्यादा धुआँ ही भरा था। वैसे सुलगाने पर आग लहक सकती थी, मगर उसने न जाने क्या सोचा कि फिर राख से ढक दिया था।

अंदर के कमरे में अब रूलाई तेज़ हो गई थी। बार-बार के आग्रह के बावजूद माला खा नहीं रही थी। उसकी चौदह साल की बड़ी बिटिया सीमा किवाड़ के पल्ले लग के काठ बनी खड़ी थी। सिर्फ़ छुटकी रोमा चुपचाप कौर निगलती जा रही थी। पड़ोस की दोनों स्त्रियाँ, कमला और तारा, समझाते-बुझाते परेशान हो रही थी। कुछ देर के लिए तो कमला भी रोने लगी थी। यूँ आँसू तारा के गालों पर भी टुलके थे। मगर वह धैर्य के साथ कमान सँभाले हुए थी। फिर भी माला ने थाली की तरफ़ देखा तक नहीं था।

माला की रूलाई जब हिचकी पर आई तो उसके बोल फूटे, “मैं कैसे खाऊँगी वह अन्न जिसके लिए मेरा मुन्ना तरस कर गया?... अरे बाप रे बाप!...” और मुँह में साड़ी का आँचल ढूँस लिया उसने। उसकी हिचकी और बढ़ गई थी।

“यह कलयुग है बहन, कलयुग! इसमें जो न हो! हमारे-आपके जैसे सब घर का हाल यही है। वह जो चला गया, लेकिन ये जो दोनों बच्चियाँ हैं, इनको देखकर जीना तो पड़ेगा ही।... और न चाहकर भी कुछ तो खाना ही पड़ेगा!...” कमला अपनी बाँहों में माला को थामे समझा रही थी।

“और किसी कारण जाता तो दुःख नहीं होता। बीमारी तो बहाना थी।... जिस भात का नाम जपते

वह गया उसे मैं कैसे निगलूँगी? इन दोनों को खिला दो। मैं गले के नीचे कुछ धँसा नहीं पाऊँगी।” माला अब भी अड़ी हुई थी।

मगर तारा उसके आगे थाली खिसका चुकी थी। फिर वहीं सीमा को हाथ पकड़ बिठा लिया था उसने। सीमा थाली के आगे बैठ तो गई थी, अगर अपनी माँ के इंतज़ार में खुद का हाथ रोके हुए थी। तभी कमला ने माला का हाथ पकड़ थाली की तरफ़ बढ़ाया। उसी बीच तारा दोनों के आगे के भात पर दाल डाल चुकी थी।

काफ़ी मशक्कत के बाद माला ने थोड़ा-सा खाया। दिन भर की भूखी सीमा ने भी जैसे-तैसे पेट भरे। सीमा ने ही जूटे बरतन उठाए और बाहर धोने को निकल गई। अँधेरे के कारण उसके साथ तारा भी चापाकल तक गई थी।

कुछ देर बाद कमला और तारा थाली-बरतन लेकर वापस चली गई। आख़िर में बिछावन पर आ रही सीमा ने पूछा, “ढिबरी जलने दूँ या बुझा दूँ?”

“जलने दे!... आज रात भर जलेगी। थोड़ा तेल भी डाल दो। मगर नीचे नहीं, किसी चीज़ के ऊपर रखना।” मैली-सी कथरी देह पर फैलाती माला बोली।

ढिबरी में तेल भरकर सीमा खड़ी हुई। इधर-उधर देख मिट्टी की छोटी-सी कोठी के कांधे पर रखने को हुई थी कि माला चीख पड़ी, “कोठी में बीज का धान है, गे करमजली! सब कुछ तो गया, अब बीज-बीज भी नष्ट कर दोगी?...”

सीमा ने सहमकर तेज़ी से ढिबरीवाला हाथ खींचा और दो डग पीछे चली आई। उसकी छाती धक-धक करने लगी थी। क्षणभर रुककर उसने किरासन तेलवाला एक खाली कनस्तर खींचा और उस पर ढिबरी रखी। चित्त स्थिर अब भी नहीं हुआ था उसका। वह सोचने लगी थी कि सबकुछ जानते-बूझते ऐसी गलती कैसे करने जा रही थी? ढिबरी छू जाती तो एक भी बीज नहीं उगता!...तब कैसे होता फिर धान? ...हे भगवान! अनर्थ होते-होते रह गया!...

उधर बाहर के ओसारे पर देवजी और बैजू के पास चुप बैठे तीनों आदमी अब हिलने-डोलने की मुद्रा में आ गए थे। बैजू को तो वहीं सोना था, मगर कमला और तारा की आकृतियों की वापसी देख सत्यनारायण और जयनारायण की भूख जग गई थी। सुकेश भी दिनभर का भूखा था। दाह-कर्म कर घाट से लौटा तो मुट्ठी भर कच्चा चूड़ा चबा पानी मात्र पिये हुए था। स्त्रीगण बरतन-बासन माँज, घर-आँगन लीपकर ही चूल्हा जला सकती थी। सब-के-सब दिनभर के भूखे थे। सो वह चाय भी नहीं माँग पाया था। इसलिए अब वह भी भागने का मन बना रहा था!...

कि पहले जयनारायण खड़ा हुआ, “अब खा ही लें! फिर बैठेंगे।”

“हाँ-हाँ!...” कहते सुकेश भी उठ गया, “मुझे भी फिर आना होगा क्या, सत्यनारायण भैया?”

“अभी नहीं आओगे तो कोई बात नहीं। सुबह तो बात-विचार करने आना ही होगा। इसकी कर्म-क्रिया जो भी होगी, तीन दिन पर ही हो जाएगी न!” सत्यनारायण बाहर के अँधेरे में खड़े थे। जयनारायण हिला-डुलाकर देवजी को जगा रहा था। मगर जगे होकर भी देवजी मृतप्राय से पड़े थे। काफ़ी प्रयास के बाद वे मतिहीन की सी स्थिति में उठे। जयनारायण उनके हाथ पकड़ दक्षिण दिशा में खिंचता-सा लिये जा रहा

था।

उस वक्रत तीन तारे आसमान पर चढ़ गए थे। सघन अँधेरे में कोहरा धीरे-धीरे सफ़ेद चमक बढ़ाता जा रहा था।

देवजी की जिंदगी की दास्तान बहुत लंबी है और पुरानी भी कम नहीं। उनका अपना इतिहास-भूगोल रहा है।...

बात भूगोल से भी शुरू की जा सकती है!... देवजी रोज़ी-रोटी के क्रम में यूँ तो पंजाब-दिल्ली तक चक्कर लगा आए थे, मगर उनका वास्तविक भूगोल अपने गाँव और पास-पड़ोस से ही पहचान पाता था। नदियों का जाल और उजड़ते जंगल के बीच तमाम आधुनिक सुविधाओं से वंचित एक गाँव की सीमा में ही देवजी की वह पहचान सहज-सुरक्षित थी। ठेठ ग्रामीण संस्कार में ढले देवजी का जीवन मेहनत-मजदूरी पर टिका था। वैसे उनका थोड़ा विश्वास भगवान पर भी था। इस विश्वास के बावजूद मेहनत-मार्ग पर चलते हुए देवजी बच्चे पर बच्चे पैदा करते जा रहे थे। उनके इतिहास की नींव इन्हीं स्थितियों के बीच कहीं गड़ी थी।

वैसे देवजी कभी अच्छे-खासे किसान परिवार के सुखी-संपन्न नागरिक हुआ करते थे। दस एकड़ ज़मीन, गाछ-वृक्ष, जोड़ा बैल—सबकुछ था उनके पास। माँ-बाप के अलावा छोटा भाई और छह बहनों का भरा-पूरा परिवार था। मगर बहनों की शादी कराते-कराते घर की हालत पस्त हो गई थी। काफ़ी सम्पत्ति उन प्रयोजनों में बिक गई थी। बची-खुची सम्पत्ति में से कुछ छोटे भाई जो असम में एक इम्तहान देने गया, तो मारा गया था—उसकी पढ़ाई में भी बिकी थी।

फिर भी चार एकड़ के करीब बचती थी, ज़मीन। लेकिन बारी-बारी माँ-बाप का श्राद्ध-कर्म, भोज आदि निबटाते ढाई एकड़ मात्र बच गई थी। उस छोटी-सी टुकड़ी में भी शुरू-शुरू में घर-गृहस्थी चल रही थी। जीवन में फ़र्क़ आया तो बस इतना कि पहले मज़दूर-हलवाहों के हाथों खेती करवाते थे, अब अपने हाथों करने लगे। कुछ ही दिन दिक्कत हुई हल का लागन (हल्था) पकड़ने में। फिर जब हल जोताई नियमित की तो कटाई-गोराई, कमौनी-निकौनी से लेकर खेती-बारी के जितने काम थे सब खुद करने लगे। धीरे-धीरे यह भी हो गया कि जब अपने खेत में काम नहीं होता था, तो दूसरे के खेतों में दिहाड़ी कर आते थे। उधर माला भी बड़ी हवेली के चौके-बरतन या उपले थापने जैसे काम करके कुछ ले आती थी। कभी किसी के घर चूड़ा कूट-फटक तैयार कर आती, कभी किसी की दाल दरर देती, तो कभी चक्की चला सत्तू-बेसन पीसते किसी के संग लगनी गा आती। इसी तरह जीवन की गाड़ी खिंचते चार बेटियों के बाद एक बेटा जन चुकी थी माला जिनमें दो बेटियाँ कुछेक महीने ही खेलकर जा चुकी थीं, मगर राम-लखन जैसे बालकों की प्रतीक्षा में परिवार-नियोजन का विचार हमेशा टालते रहे दोनों प्राणी।

माला के पेट में पाँचवी संतान के रूप में जब मुन्ना आया था, तब तक तमाम बदहालियों के बावजूद किसी मरनी-हरनी को छोड़ चूल्हा विराम की नौबत नहीं आई थी। तमाम कष्टों-अभावों के बावजूद घर में हँसी-खुशी के क्षण बिल्कुल ग़ायब नहीं हुये थे। क्रिस्से-चुहल और हर मौसम के गीत जब-तब वहाँ भी गूँजते थे। आईना-कंघी, रीबन-बिंदी का साथ पूरी तरह नहीं छूटा था माला से। कभी-कभार सिर में नारियल तेल की जगह सरसों तेल ही सही, मगर लगता ज़रूर था!... और माला के उतने ही साज-शृंगार पर देवजी खूब रीझते थे और आनंदमग्न हो नटराज बन जाते थे!...

लेकिन जीवन के उस सुख में अचानक ग्रहण लग गया।...

...घर में दाने नहीं थे, न देह पर पूरा वस्त्र। डेढ़मस्सू मुन्ना की देह में लगाने के लिए सरसों तेल तक दुर्लभ था। बैशाख की ऐसी बैठाड़ी थी कि कहीं सप्ताह में एक दिन भी मजदूरी नहीं मिल रही थी। यूँ तो महीने भर से वह हवेली के श्याम बाबू के बछड़ों को हल-गाड़ी लगाना सिखा रहे थे। मगर कभी-कभार के नाश्ते या एकाध कदू-बैंगन के अलावा वहाँ से कोई प्राप्ति नहीं थी। श्याम बाबू ने बैल तैयार हो जाने के बाद कुछ दिन मुफ्त जोतने देने का आश्वासन मात्र दिया था। सो उन्हीं दिनों देवजी का मन-मिजाज डोल गया।

समय-साल वही था! स्थिति वाम थी ही! गाँव के कई नौजवान दिल्ली-पंजाब जा रहे थे। दस रुपए सैकड़ा प्रतिमाह के ब्याज-दर पर तीन सौ रुपये ऋज उठाकर देवजी भी चले गए दिल्ली।

दिल्ली में तीन-चार दिन के प्रयास पर ही उन्हें कैमिकल्स की फैक्ट्री में काम मिल गया था। लेकिन अभी पंद्रह दिन ही काम किया था उन्होंने कि गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। भला आदमी था वह सेठ कि उनके परिचित साथियों के प्रयास पर उसने बतौर एडवान्स पंद्रह की जगह सात दिन का पगार दे दिया था। मगर उसका अधिकांश दवा और पथ्य में ही उड़ गया था। धीरे-धीरे थोड़े ठीक हुए तो उनका जी दिल्ली से उचट गया। तब मात्र सौ रुपए बचे थे उसके पास! जाए तो जाए कहाँ? तभी उन्हें पता चला कि उसी रात की गाड़ी से बगल की झुग्गी के कुछ मजदूर धान रोपाई करने पंजाब जा रहे हैं। कि अपने किसी ग्रामीण-परिचितों को बताए बगैर वह भी उनके साथ लग गए।

अगले दिन मानसा जिले के एक दूरस्थ गाँव में थे वह। वहाँ धान रोपाई शुरू हो चुकी थी। इस काम में देवजी सिद्धहस्त थे। सो खूब मन लगाकर रोपाई करने लगे। उनकी टोली के बाकी मजदूर भी वैसे ही परिश्रमी थे। उनके साथ वह अधिक से अधिक खेत ठेके पर लेते और सोलह-सत्रह घंटे रोज़ काम करते।

देवजी अपने काम में इस क्रदर मस्त होते कि गाँव-घर की याद कम सताती थी। कभी कुछ पल को सुस्ता रहे हों या कुछ खा रहे हों अथवा सोने जा रहे हों, तो जरूर गाँव-घर के चित्र उनके सामने नाचने लगे थे। ऐसे क्षणों में कभी बेटियाँ मुस्करातीं, तो कभी नन्हा बालक मुन्ना खिलखिला उठता। वह एक अजीब तरह की सिहरन अपने भीतर महसूस करते। कि तभी माला साक्षात् होती और उनके मन-प्राण व्याकुल हो जाते!... बच्चों का लालन-पालन कैसे कर रही होगी वह?... यह प्रश्न देर तक हथोड़ों की तरह चोट करता रहता उन पर।

फिर उनको याद आती कि अगर दिल्ली से कोई परिचित इस बीच गाँव गया, तो वह क्या बताएगा?... यदि सच-सच कह देगा कि वह कहाँ गए उसको नहीं मालूम!... तब क्या बीतेगी माला पर? बच्चियाँ कितना रोएँगी?... ऐसे खयाल आने पर वह रोज़ सोचते, 'कल एक चिट्ठी भेजूँगा!' मगर काम की धुन में इस क्रदर खोए थे कि वह, कि वह कल लगातार आगे भाग रहा था।

काफ़ी दिन बाद जब धान रोपाई बीत गई और धान के पौधे में रंग गहराने लगा था, तो वह सरदार के फार्म-हाउस में माहवार वेतन पर नौकरी से लग गए थे। तभी उन्होंने एक हजार के मनीआर्डर के साथ एक चिट्ठी गाँव भेजी थी।

चिट्ठी भेजे पंद्रह दिन भी नहीं गुजरे कि एक दोपहर फार्म-हाउस वाले सरदारजी ने उन्हें एक बैरंग लिफ़ाफ़ा दिया। धड़कते दिल से उन्होंने लिफ़ाफ़ा फाड़ा और एक साँस में पढ़ गए। फिर भूसघर के बगलवाले नीम गाछ के नीचे एकान्त में बैठकर कई-कई बार उन्होंने उस पत्र को पढ़ा जिसकी टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट में माला ने अपनी आत्मा धर दी थी। उस पत्र का लबोलुआब यह था कि मनीआर्डर नहीं पहुँचा

था। घर में कोई भी सुख-चैन से नहीं था।... टोले में ऐसा कोई नहीं बचा था जिससे कुछ-न-कुछ क्रज उधार नहीं ले चुकी थी वह। फिर भी वह कई रोज़ दोनों वक्रत चूल्हे को आग नहीं दिखा पाई थी। तब भी अंतिम हिस्से में उसने लिखा था, “मैं तो यही कहूँगी कि बच्चों का खयाल कर गाँव आ जाइए। साथ मिलकर दुःख काटने में भी सुख है। मुझे की तोतली बोली आत्मा जुड़ा देगी।... वैसे मैं मूर्खा हूँ। अच्छा-बुरा तो आप ही समझेंगे। आपको जो अच्छा लगे वही कीजिएगा। अपने ऊपर ध्यान दीजिएगा। मेरी चिंता नहीं कीजिएगा। मुझे क्या होगा...? मैं ठीके हूँ।”

और पत्र का वही अंतिम अंश देवजी के मन-मस्तिष्क को झकझोरने के लिए काफी था। कुछ ही देर बाद सरदार जी के पास अपने गाँव जाने का प्रस्ताव लेकर हाज़िर थे देवजी। सरदार ने कई तरह से समझाने का प्रयास किया। लेकिन देवजी ने जो एक बार निर्णय ले लिया तो ले लिया। अगले दिन वह सहरसा तक का जनरल क्लास टिकट लेकर ट्रेन में सवार हो गए थे।

तीसरे दिन सहरसा होते अपने गाँव के स्टेशन ललितग्राम उतरे वह, तो शाम ढल रही थी। शुक्रवार था। ललितग्राम में हाट लगा हुआ था। देवजी ने वहीं से बेटी-बेटा के लिए कपड़े, चश्मा गोला साबुन, माला के लिए एक पत्ता बिंदी और नारियल तेल का छोटा डिब्बा लिए। संदेश के नाम पर तीन रुपए का ग्लुकोज बिस्कुट।

जब वह घर पहुँचे तो अंधेरा घना हो गया था। बच्चों ने एक बार खुशी में शोर तो मचाया, मगर तुरंत चुप भी हो गए। यह चुप्पी देवजी को डरा गई। उनका सिर चकराने लगा था। माला कहीं नज़र नहीं आई थी।

डरते-डरते उन्होंने सीमा से पूछा, “माँ कहाँ गई, बेटा?”

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। बच्चे बस एकटक घूरने लगे थे, जैसे वह कोई अपरिचित-अनचिन्हार हों!

घबड़ाकर देवजी ने दोबारा वही सवाल किया।

“कमरे में सोई है।...” मुझे को सँभालती सीमा बोली।

“इस वक्रत!...क्यों?...क्या हुआ?...”

फिर कोई जवाब नहीं मिला।

क्षणभर बाद कमरे में दाखिल हुए ही थे कि पीछे सीमा की आवाज़ पहुँची, “माँ पर देवी सवार थी। कुछ ही देर पहले उतरी है।” देवजी के पाँव ठिठक गए। कुछ पल वह दरवाज़े के पास जड़वत खड़े रहे। उन्होंने गौर किया कि बच्चों में कोई उनके पीछे अंदर जाने को उत्सुक नहीं था। फिर साहस बटोरकर वह चारपाई तक पहुँचे। चारपाई पर आँधे मुँह पड़ी माला बेसुध थी। ताखे पर रखी ढिबरी रोशनी से ज्यादा धुआँ छोड़ रही थी। वह माला के करीब बैठ गए। अगले पल उनका एक हाथ माला के बालों में था। उनकी काँपती-सी अँगुलियाँ बालों को सोहराने लगी थीं। दूसरा हाथ पसीने से भीगी माला की पीठ पर चला गया था।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि एक कराहती आवाज़ आई, “कौन?”

“माला! माला!...उठो! मैं आया हूँ!...” देवजी की भरपूर आवाज़ निकली।

माला ने करवट लेकर आँखें खोलीं। बिल्कुल भावहीन नज़र थी। आँखें यूँ खुली थीं कि पलकें भी

नहीं झपक रही थीं। देवजी के लिए वह दहशत पैदा करने वाली स्थिति थी। वह पीसने-पसीने हो गए थे। उनका अपरिचित-सा स्वर निकला, “माला!...” और कंठ अवरुद्ध हो गया।

कुछ क्षण और बीते होंगे कि माला ने उठने का प्रयास किया। सहसा देवजी सचेत हुए और झट से सहारा देकर उन्होंने माला को बिठाया। फिर दोनों निश्चेष्ट-से हो गए। न देवजी कुछ पूछ पाए, न माला के भीतर से कहने-जानने लायक कोई बात निकली। एक भारी-भारी-सी चुप्पी छायी रही।

थोड़ी देर बाद माला एक रोगी की तरह खड़ी हुई और रसोई की तरफ बढ़ गई। देवजी कुछ पल वहीं बैठे रहे। फिर उठकर ओसारे में आ गए। धीरे-धीरे बच्चे उनके करीब आ गए थे, मगर देवजी सहज नहीं हो पा रहे थे। उनके चेहरे विद्रूप और हाव-भाव विचित्र लग रहे थे।

और यही वह क्षण था जब उन्हें आभास हुआ कि उनके जीवन में ग्रहण तो कब का लग चुका है। हरे-भरे धान में जैसे ‘काल’ नामक बीमारी लगती है तो अचानक पत्ते पीले पड़ने और कट-कट के गिरने लगते हैं, और उनकी वृद्धि रुक जाती है— ठीक उसी तरह माला और देवजी के घर-परिवार के सुख-चैन में लगा ग्रहण अपना असर दिखाने लगा था। ‘काल लगे धान’ वाले किसान की तरह पीड़ित देवजी छटपटा रहे थे।

यूँ अगले दिन तक ऊपर-ऊपर स्थिति सामान्य नज़र आने लगी थी। लेकिन देवी-प्रकोप का जो भय था उसने ओझा-गुनी के यहाँ से उनका लगाव बढ़ा दिया था। हज़ार का जो मनीआर्डर उन्होंने भेजा था वह खुदरा क्रर्ज़ और घर-खर्ची में उड़ चुका था। अपने साथ जो पन्द्रह सौ के करीब बचाकर लाए थे उसमें से ओझा-गुनी के लिए दो सौ बचाकर घर के लिए मात्र आधा मन चावल और एक मन गेहूँ ला पाए थे वह। कुछ छोटे-छोटे क्रर्ज़ और उधार के अलावा कमाने जाते वक़्त जो तीन सौ रुपए उठाए थे, उसका मूलधन मात्र लौटा पाए थे। पाँच महीने का सूद 150/- अब नए सिरे से मूलधन बन गया था।

ओझा-गुनी आए। भरपेट खाकर पूजा-पसार, भाव-भगत दिखाकर संतोष दे गए। छ महीने के भीतर एक बकरे की बलि भी आवश्यक बता गए थे।

देवजी अब फिर पहले की तरह अपनी ज़मीन में खेती के अलावा दूसरे के यहाँ मजदूरी करने लगे थे। लेकिन गाड़ी पटरी से उतर चुकी थी। चूल्हे जलना लगातार कम होता जा रहा था। जब-तब जहाँ-तहाँ क्रर्ज़ के लिए वह हाथ पसारते रहते थे। बलि का बकरा भी उन्होंने क्रर्ज़ लेकर ही ख़रीदा था। एक तरह से सघन चक्रव्यूह में फँस चुके थे वह!...

गाँव में उनका कोई मददगार नहीं रह गया था। हवेली के बछड़ों को हल-गाड़ी लगा बैल बनाने के एवज में श्याम बाबू ने कुछ दिन जोतने का जो आश्वासन दिया था, वह आश्वासन ही रहा। सीजन भर बैलों को फुर्सत ही नहीं मिली, तो उन्हें कैसे देते वे! उलटे उस उम्मीद पर देवजी की खेती पिछड़ गई।

रोज़-रोज़ के संकटों में साल गुज़रा कि माला को फिर एक संतान हुई थी। तमाम तकलीफ़ों के बावजूद लड़का होने की खुशी ही थी कि आधा एकड़ ज़मीन बंधक लगाकर कुछ क्रर्ज़ें चुकाने के साथ ही उन्होंने नवजात के स्वागत-सत्कार की कोताही दूर की थी।

लेकिन परिस्थितियों के आगे उनकी यह तैयारी कमजोर सिद्ध हुई। नवजात बालक अक्सर बीमार रहने लगा था। राम-लक्ष्मण की तरह की इस जोड़ी के लिए उन्होंने चार-चार बेटियों के बाद भी धैर्य रखा

था। अब उस जोड़ी को कायम रखने में कोई कसर कैसे छोड़ते? सो उस बच्चे के इलाज में साल लगते-लगते बंधक लगी आधा एकड़ ज़मीन बेचनी पड़ गई थी। मगर नेफ्रॉटिक सिंड्रोम नामक जो बीमारी उस नवजात को लगी थी, वह उसकी किडनी समाप्त करके ही रही। आखिर दूसरा साल लगने से पहले ही वह बालक मर गया।

अब लक्ष्मण बिना अकेले राम की तरह मुन्ना ही माला और देवजी की आँखों का तारा था। लेकिन कुछ ही साल बीते होंगे कि छह वर्षीय मुन्ना को टीबी हो गई। डॉक्टर ने उसके लिए साफ़-स्वच्छ कपड़े-बिछावन, फल-दूध, अंडा आदि पौष्टिक तत्वों वाले आहार की तालीश की थी। यह सब उस घर में कहाँ से और कितने दिन निभ पाता। गाछ-बाँस वाली तीन कट्टा ज़मीन और बिक गई, मगर संकट ज्यों-का-त्यों बना रहा।

पहले एकाध शाम चूल्हा विराम रहता। तब बच्चों को कुछ-न-कुछ खिलाकर दोनों प्राणी भूखे रहते थे... फिर जब-तब दिन से रात तक चूल्हे की हड़ताल रहने लगी। तब बड़ों के साथ बच्चों को भी भूख से बिलख-बिलखकर वक्रत गुज़ारना पड़ता था।

अब तक देवजी के साथ माला भी मज़दूरी पर जाने लगी थी। मगर घर की हालत थी कि सुधर नहीं रही थी। पेट की खोह भरना ही जब मुश्किल था तो हारी-बीमारी का क्या करते? ऊपर से ऋज का अम्बार जहाँ-तहाँ मज़दूरी रुकने का कारण बन जाता था।...

लोगों ने बैल के नाम ऋज लेने का सुझाव दिया। मगर दूध के जले थे वह! पंद्रह वर्ष पहले बैंक के ऋज पर जोड़ा बैल खरीद चुके थे। छह हज़ार के ऋज में नौ हज़ार जमा करने के बाद भी बैल बेचने पड़े थे। रात-रात भर जंगल-झाड़ी में छुपने के बावजूद पकड़ाने पर लगे पुलिसिया डंडे और सात सौ की सलामी भूल नहीं पाए थे। तो सरकारी ऋज के नाम पर झट कान पकड़ लेते थे देवजी।

ऐसे ही कठिन-कठोर दिन थे कि पौष्टिक आहार के बदले लगातार पटसन का साग और अल्हुआ मक्के की रोटी खा रहा मुन्ना एक दिन खून की उल्टियाँ करने लगा था। जिस दिन यह घटना घटी थी उसके कई दिन पहले से मुन्ना भात-दाल की रट लगाए रो रहा था। लेकिन भात-दाल उसके लिए दुर्लभ हो गए थे।

सत्यनारायण और जयनारायण के ऊपर पड़ोसी होने की जिम्मेदारी कहिए या लाचारी; उन्हें देवजी को अपने घर दाल-भात खिलाने लाना ही पड़ा था। उनकी हालात देवजी से बेहतर ज़रूर थी, मगर इतनी भी अच्छी नहीं कि दाल भात पर एक अच्छी सी सब्जी रखते। पिछवाड़े में कुछ केले के गाछ थे। उसी में से कुछ तोड़ लाए थे जिसकी नमक-मिर्चवाली तरकारी उन सबकी थालियों में परोसे भात के ऊपर अपनी उपस्थिति मात्र दर्ज करा रही थी।

देवजी के भीतर का सारा भाव-स्रोत सूख-सा गया था। उनको कई दिन बाद इस तरह भात-दाल के दर्शन हुए थे। सो तमाम दुःख-पीड़ाओं के बीच उस थाली मध्य झुका देवजी की सिर करुणा का वीभत्स-दृश्य बना रहा था। लग रहा था जैसे कोई मुर्दा किसी मशीन के सहारे हाथ-मुँह चला रहा हो!...

खाने के बाद देवजी फिर अपने उसी ओसरे में आ गए थे। अब उनके भीतर टंड कुछ ज्यादा ही पैठ गई थी। बदन खूब काँपने लगा था। सो आते ही वह अलाव के पास बैठ राख हटाकर आग कुरेदने लगे थे। भीतर आग तो थी, धुआँ भी कम नहीं था। मगर धुएँ की परवाह किए बग़ैर वह घुटनों के ऊपर से कम्बल सहित दोनों हाथ फैलाकर अलाव को घेर चुके थे।

कुछ देर बाद सत्यनारायण भी आ गए थे। अब तक आग ज़रा सुलग चुकी थी, सो वह वहीं बैठ गए। जयनारायण की पत्नी तारा को अकेले डर लग रहा था इसलिए वह पत्नी के पास रह गया था। बैजू अब तक सो गया था। सत्यनारायण चूँकि निकट गोतिया और पड़ोसी थे। फिर उम्र में भी बड़े और बुजुर्ग। सो वह अपने को ज़्यादा ज़िम्मेदार महसूस कर रहे थे। मगर एक तो दाह-कर्म की रात थी, उस पर से मृतक के पिता ही सामने थे। फिर इस दिन कर्म-क्रिया की चर्चा निषिद्ध मानी जाती थी। ऐसी स्थिति में गूँगे की तरह बैठे देवजी के साथ ज़्यादा देर तक बैठना उनका मुश्किल जान पड़ा। अलाव की आग जैसे ही थोड़ी मद्धिम हुई, सत्यनारायण चुपचाप उठ गए।

अब उस ओसारे में सोए बैजू के होते हुए भी देवजी अकेले थे। वह उसी तरह अलाव अगोरे बैठे रहे। धीरे-धीरे सुलगी हुई सारी आग टंडी पड़ गई, मगर वह उसी तरह बैठे रहे। काफ़ी रात गए जब उन्हें पेशाब करने की सुध आई, तो खड़े हुए। उस वक़्त झींगूर भी सो रहा था। संपूर्ण गाँव की निस्तब्धता में सिर्फ़ सन्नाटे की भयावहता अपनी चीख़ दबाए बैठी थी।

देवजी ने आसमान की तरफ़ देखा। उन्हें लगा, तारे रो रहे हैं! कि उन तारों के बीच उन्हें मुझे का चेहरा दिख गया! वह अब भी भात माँग रहा था!... उनकी आँखें भर आईं। वह लौटकर जब अपनी पुआल की सेज पर आए, तो अचानक बोल उठी चुहचुहिया आधी रात बीतने की सूचने दे रही थी। वह घुटने मोड़ पेट में सटाकर अलाव की बगल में लेट गए।

नींद टूटते देवजी को भयंकर टंड का अहसास हुआ। वह बुरी तरह काँप रहे थे। अगल-बगल ढककर गठरी बन गए थे वह। मगर टंड ऐसी थी कि उनकी कँपकँपी रुक ही नहीं रही थी। कुछ देर बाद वह आलथी-पालथी मारकर बैठ गए और अलाव कुरेदने लगे। आग अब नीचे के उपले पकड़े चुकी थी, मगर धुएँ का प्रभाव ज़्यादा था। सो वह बाहर निकले और थोड़ी-सी संटी के टुकड़े बटोर लाये। उन टुकड़ों के सहारे आग लहकाई और तापने लगे। थोड़ी ही देर में फिर गरमा गए थे। लहकदार आग की गर्मी पाकर उसी वक़्त जगा बैजू भी सरक आया।

आग का प्रभाव कम होते बैजू फिर लेट गया। कुछ पल बाद देवजी भी पड़ गए। इस बार उन्हें नींद कुछ देर से आई, लेकिन जैसे ही आई कि उन्होंने देखा, मरणासन्न मुन्ना भात माँग रहा है। देवजी कुछ बोल नहीं पाते हैं, लेकिन मुन्ना लगातार 'भात-दाल' की रट लगाए हुए है। तभी माला नज़र आती है। देवजी निःशब्द याचना भरी नज़रों से माला की तरफ़ देखने लगे। माला गरजते हुए कहती है, "मैं क्या करूँगी?... घर में मात्र बीज की धान है। उस धान का चावल तो मैं मरते दम तक नहीं बना सकती!..." कि तभी भात-भात करते मुन्ना की गरदन झुक गई और वह नीचे लुढ़क गया।... थर-थर काँपते देवजी की नींद टूट गई।

आँख खुलते देवजी को आभास हुआ कि कोई उनकी देह लगकर सोया है। उन्होंने एक हाथ से टटोलकर देखा। उनके पेट लगकर एक बूढ़ी कुतिया रो रही थी। उन्होंने धीरे से ढकेलकर उसे परे हटाया और बैठकर फिर अलाव कुरेदने लगे।

ऐसी ही हालत में पूरी रात गुज़ारी थी। फिर एक अनिच्छित सुबह के साथ नए संकटों का सामना हुआ था।

आठ बजते-बजते उनके बरामदे पर दर्जनभर के क़रीब बुजुर्ग, कुछ लुच्चे-लफंगे और उतने ही बच्चे जमा हो गए थे। सबके भीतर चिंता और जिज्ञासा थी कि अगले दिन के क्रिया-कर्म की क्या और कैसे व्यवस्था होगी। कई लोगों ने कई तरह से सवाल किए, मगर देवजी की जुबान हिल नहीं रही थी। अंत में लोगों ने सीधे और कड़े शब्दों में प्रहार शुरू कर दिया। आखिर उन्होंने कहा, "मुझसे तो कुछ नहीं होगा भैया।

मेरी हालत देख ही रहे हो !...”

“सो कैसे होगा?... क्रिया-कर्म और नाई-महापात्र सहित कम-से-कम अट्टारह आदमी को तो जिमाना ही पड़ेगा।” किसी बुजुर्ग ने कहा।

इस पर सत्यनारायण ने उछलकर समर्थन किया, “सो ही तो, सो ही तो !...मैं भी तो यही कहता हूँ। लेकिन इस पापी की समझ में आए तब तो?...”

“समझ में आए, न आए! इतना तो करना ही पड़ेगा।” किसी जाति-गौरव के रक्षक युवा तुर्क ने कहा।

“तो जो जैसा चाहो! आप ही लोग करो। मैं क्या करूँगा? मुझसे तो कुछ संभव ही नहीं।” देवजी ने भर्राए गले से कहा।

“रे सस्ला! बैजूआ के गले में उत्तरीय डलवाकर अब नाटक करता है। घर में बीजवाला धान है न, उसका चूड़ा तैयार करवाओ। दही-चीनी की व्यवस्था तत्काल हम कर देते हैं। गोतिया और पड़ोसी होने का दंड तो भरना ही पड़ेगा न! लेकिन आज न कल, देना तो आखिर तुमको ही पड़ेगा।” सत्यनारायण ने कुछ ऊँची आवाज़ में कहा।

कि तभी आँगन की दीवाल लगकर खड़ी माला की आवाज़ आई, “कोई मेरा बीज नष्ट करना चाहेगा, सो कैसे होगा? आएँ! हम सबको भी मार दीजिए सब मिलकर, तब जीम लीजिएगा भोजन खूब छककर। जीते जी तो मैं बीज का धान किसी को छूने भी नहीं दूँगी!”

“सुनते हैं न आप सभी !...” सत्यनारायण की तेज़ आवाज़ आई, “ई सरवा औरतिया का मन बढ़ा दिया है। इस भौंसड़ीवाली के गाँड़ पर लात नहीं लगता है न, सो मन बढ़ गया है। मरद-मानुस की बात में टुब-टुब करेगी, साली !...”

“खुद का लक्षण देखिए। जेठ होकर साली कहते और गाँड़ पर लात लगाते ज़रा भी लाज-शरम है नहीं, दूसरे को कहते हैं !...बीजखौका!” फटी कंठ से माला की आवाज़ आई।

सत्यनारायण गुस्से से काँपने लगे थे।

मगर कुछ भले लोग दोनों तरफ़ शांति का प्रयास करने लगे थे। इस प्रयास में पंडितजी की भूमिका से सत्यनारायण को आशंका हुई। हो न हो, यह बहरिया पंडित यश लूट लें और जीवनभर उलाहना देते सिर नीचा करवाते रहें। आखिर देवजी हैं तो उसी के गोतिया! सो वह तत्काल शांत हो उपाय निकालने लगे।

क्षणभर बाद जब पूरी शांति छा गई तो पंडितजी ने पूछा, “देवजी, आप ही कहिए क्या और कैसे हो?”

“जो आप सबका विचार!” पलभर रुककर देवजी ने कहा, “लेकिन कुछ ऐसा कीजिए कि मेरा बीज बच जाए।”

फिर बीज बचाने की बात! पहले प्रायश्चित का पाप कटवाओगे या...? सत्यनारायण को गुस्सा तो खूब आया, मगर वह खून का घूँट पीकर रह गए। फिर अपने तई समझदारी से बोले, “पंडीजी, चलिए इसकी यह बात भी रह गई। लेकिन अभी जो धान कहीं से लाऊँगा, उसका ड्योढ़ा गेहूँ तैयार होते ही देना होगा। पैसे श्यामबाबू की तरह दस टकिया नहीं, लेकिन छह रुपये सैकड़ा सूद से मिलेगा। इससे ज़्यादा तो

कुछ नहीं संभव?...पूछिए!”

पंडितजी कुछ और चाल चलना चाहते थे लेकिन तत्काल देवजी ने हामी भर दी, “मंजूर है!”

फिर तो जो और जैसा निर्णय होना था, हो गया। देवजी पर एक मन धान के अलावा दही-चीनी और क्रिया-कर्म के साढ़े तीन सौ रुपये ऋज चढ़ गया।

सब के रहमो-करम से बैजूके गले का उत्तरीय टूटा और देवजी को पुत्र-प्रेत से मुक्ति मिली। अट्टारह के बदले पचीस जन जीमकर चले गए। दिन ढल गया। रात बीत गई। माला और देवजी ने एक दाना मुँह में नहीं लिया। बेटे के श्राद्ध का अन्न आखिर कैसे गले उतारते?

जीवन तो आखिर अनचाहा भी करवा देता है। अगले दिन उबला हुआ अल्हुआ (शकरकंद) खाकर उन्होंने पानी पिया। धीरे-धीरे शोक-मुक्त हो रहे थे। मगर बहुत आसान नहीं होता दुःखों से निजात पाना। अल्हुआ ही सही सुबह तो खा लिये, शाम की चिन्ता फिर सामने आ गई थी। शाम में बच्चों को श्राद्धवाला जो थोड़ा चूड़ा बचा हुआ था, वही दिया गया। अपने दोनों प्राणी बथुआ-सरसो साग के साथ अल्हुआ की रोटी एक-एक टुकड़ी ले, दो की जगह चार गिलास पानी पी गए। देवजी अकेले बाहरी ओसारे के अलाव पर चले गए, तो जल्दी ही ढिबरी बुझा माला भी सोने चली गई।

रात जैसे-जैसे गहरा रही थी ठंड भी बढ़ती जा रही थी। माघ के कोहरे घने होते जा रहे थे। लेकिन उस ठंड से बेखबर अलाव अगोरे देवजी अब अगले दिन की जुगाड़ की चिन्ता में परेशान-परेशान हो रहे थे।

## बीज-व्याधि

धनकटनी के बाद का वह सीजन था जब गेहूँ के पौधे खाद-पानी माँगते छोटे किसानों की चैन और नींद हर रहे थे। कुछेक घरों को छोड़ पूरा गाँव उसी चिन्ता में डूबा हुआ था। तंगहालों की कोलियों के गेहूँ की पौध डटियाती पीली पड़ने लगी थी। जहाँ-तहाँ फ़सलें सूख रही थीं। मगर लोग थे कि अपने सूखते खून से अनजान गेहूँ-धान के सूखते पानी की चिन्ता में परेशान-परेशान हो रहे थे।

यही हाल देवजी की भी थी। लेकिन तब उनकी उम्मीद पूरी होने की करीब आ गई थी।...

मुन्ने के क्रिया-कर्म को बीते चार दिन हुए थे। काफ़ी दिन बाद उस रोज़ मिट्टी काटने का काम मिला था। दोपहर के भोजन के अलावा शाम को पचास रुपए नगद मिलने पर वह यूरिया के लिए कुछ बचा एक किलो चावल लेकर लौटे थे। सो चूल्हे पर भात चढ़ा हुआ था और माला साग बीनने में लगी हुई थी।...कि तभी श्याम बाबू का बुलावा लेकर उसका पोता रिकू आया।

देवजी ने मीठे स्वर से पूछा, “क्या बात है, रिकू बौआ?”

“बात तो बाबा जाने!... शायद पूरब के सिवान में पम्पसेट मशीन गई है। आज रात वहाँ की पटौनी करने की बात कर रहे थे।” रिकू जल्दी में था, “तो मैं चलूँ!”

“आप बढ़िए! मैं पीठ लगे ही आ रहा हूँ। बस दो कौर झटपट खा लेता हूँ।” अरसे बाद देवजी के भीतर राहत की सी अनुभूति हुई थी। चूँकि उस सिवान में श्याम बाबू की मेढ़ से लगी देवजी की दसकठिया ज़मीन थी। उसमें ख़ूब जतन से गोबर-राख जैसी देसी खाद डालकर उन्होंने गेहूँ बोया था, मगर पानी बिना पौधे पीलपिले हो गए थे। ऐसे में श्याम बाबू का बुलावा उन्हें स्वाती की बूँद प्रतीत हुआ था। माली की तरफ़ देखते उन्होंने जल्दबाज़ी का संकेत दिया, “अधसिद्धू हो गया होगा! निकालो दो कलछुत भात। देर हो

जाएगी, तो सुबह मशीन दूसरे के खेत चली जाएगी। तब तो अपना खेत रह ही जाएगा।”

“अरे जाह! ये जानती तो साग पहले बना लेती।” माला ने अफसोस जताया।

“अभी छोड़ो साग! बना लेना बाद में। मुझे नमक-मिर्च के साथ दे दो थोड़ा।”

“हाँ, देती हूँ।”

और गरमागरम अधसिझू भात झटपट निगलकर देवजी भागे श्याम बाबू के यहाँ। पानी भी उन्होंने श्याम बाबू के चापाकल पर ही पिया।

श्याम बाबू जानते थे कि जाड़े की रात में कोहरे और पानी के बीच मुफ्त खड़ा रहने वाला दूसरा नहीं मिलेगा। इसलिए उन्होंने आते ही प्रलोभन दे डाला, “हमारा खेत हो जाए, तो तुम अपना भी पटा लेना। पानी के रुपये के बदले गेहूँ ही सही, तैयार होने पर दे दोगे ना? पहले का भी कुछ है।”

“हाँ कका! आप ही के बल पर गेहूँ उपजेगा और आपके पैसे नहीं दूँगा! पहलेवाला सब भी धीरे-धीरे...” देवजी ने कृतज्ञता जाहिर की।

“तो जाओ सिवान! रघु वहीं मशीन पर है। भेज देना उसको।”

और देवजी पतला-सा कंबल लपेटे चले गए पूरब सिवान।

रातभर कड़े-कमान रहकर देवजी ने श्याम बाबू के खेतों की पटौनी पूरी की। ठंड और कोहरे के बीच भूत की तरह भिड़े रहे। सुबह हो गई थी जब वह अपने खेत में पानी काटकर मेड़ पर आए थे। हाथ-पैर इक क़दर ठिठुर गए थे कि उन्हें आग की ज़रूरत महसूस हुई। लेकिन आग जलाने का कोई जुगाड़ नहीं था। आखिर गमछी में बँधी खैनी निकालने ही वाले थे कि तभी बगल के खेत वाले सदन और रोहित कोहरे के बीच से नमूदार हुए। सदन के खेत में भी पानी बाक़ी था, सो वह हसरत भरी नज़रों से देवजी के खेत में आते पानी को देख रहा था। रोहित जो हाइब्रिड नस्ल की गोभी लगाए हुए था और हर हफ़्ते खाद-पानी डालते आ रहा था, उसकी अकड़ तब आश्चर्यजनक रूप से कम थी। वह चुपचाप खैनी लटा रहा था।

“बड़ा चुप हो रोहित! क्या बात है?” देवजी ने हिम्मत करके पूछा।

“देख रहा हूँ भैया, आपकी देसी टेकनीक! घरेलू बीज और खाद डाले हैं, तो पटौनी में देर होने पर भी फसल बच गई। जो-जो लोग पाकेट वाला हाइब्रिड बीज और ख़ूब खाद डालते हैं, उसकी फसल दो रोज़ पानी में देर होते ही जलने लगती है। दवा-खाद की कमी होते कीड़े लग जाते हैं। सुकेश भैया तो समझो लुट गया।”

“हाँ, सुकेश तो सच में पछता रहा है। तुम तो इस बार गेहूँ किए ही नहीं। अच्छी है सब्जी की खेती।”

“नहीं भैया! गेहूँ छोड़ पछता रहा हूँ। ई गोभी लगता है कंगाल कर देगी।”

“ऐसा क्यों?... गाँवभर में तो तुम्हारी वाहवाही हो रही है!”

“वाहवाही से क्या होता है? इतने खाद-पानी के बाद गोभी का जंगल भर है। फूल आते भी तो कीड़े लग जाते। मूली-बैंगन तो बेस्वाद लगते, कौन खरीदेगा? कहीं इस क़र्ज़ में ज़मीन न बिक जाए!...” और दोनों की तरफ़ उसने खैनी बढ़ाई। थोड़ी देर के लिए वातावरण में मायूसी छा गई। होंठ तले खैनी दबाते सहसा सदन बोला, “लोग कहते हैं, अमेरिकन बीज मालोमाल कर देता है।”

“वही सुन-सुनकर तो मैंने बर्बादी गले लगाई है।” रोहित का करुण स्वर था।

“अरे, कल रेडियो पर चर्चा आ रही थी कि अमेरिकी कंपनी के बीज-व्यापार और न जाने किन-किन बातों को लेकर। चर्चा में पाँच बड़े-बड़े विद्वान-पत्रकार शामिल थे। उनमें सिर्फ़ एक आदमी, जो उन कम्पनियों से नाराज़ मालूम पड़ता था, उसके नुकसान बता रहा था। बाकी सारे फ़ायदे-ही-फ़ायदे गिना रहा था।” सदन ने जोर देकर कहा।

“अरे भाई सदन!...” खैनी वाला थूक फेंकते धीरे से देवजी बोले, “मैंने भी सत्यनारायण भैया के रेडियो पर कल सुनी थी वह चर्चा। वह जो बाहरी कम्पनियों का नुकसान बता रहा था... मैंने गौर किया कि उसकी आवाज़ में पूरी सच्चाई थी। ये कम्पनियाँ हमें बीज-विहीन कर देंगी और हमारी ज़मीन को बंजर करके छोड़ेंगी।”

इस बार किसी ने कोई टिप्पणी नहीं खी। एक गहन चुप्पी छा गई थी। देवजी अपने खेत में आते पानी की निगरानी करने को उत्सुक हुए। कि तभी कोहरे को चीरकर रघु आ गया, “हुआ नहीं देवजी?... कितना रह गया है?”

“थोड़ी ही देर पहले तो मैंने अपने खेत में पानी खोला है।... बस घंटाभर में हो जाएगा।” देवजी ने घबड़ाते हुए कहा।

“ठीक है, तब तक रामफल आ जाएगा जुआ-बैल लेकर। अभी उसी के खेत में लगेगी मशीन। ज़रा मदद कर दीजिएगा भैया। मैं एक बार आपके टोले होकर आता हूँ। मालूम तो हुआ ही होगा, बज़्र गिर पड़ा बेचारे के घर-परिवार पर।” रघु ने अपनी रौ में कहा।

कि एक साथ तीनों की आवाज़ आई, “क्या?... क्या हुआ?”

“अरे, नहीं मालूम!... सुकेश मर गया।”

“कैसे?... क्या हुआ?”

“... कल शाम मैं खेत से लौट रहा था, तो मिला था कितना भला-चंगा। मुझसे तम्बाकू लेकर खाया था और कितनी सारी बातें हुई थीं!...”

“अरे, मेरे साथ तो शाम में देर तक अलाव पर बैठा था।... खाद-बीज की बात कर रहा था।...”

“वही तो?... ”

“हाँ, वही तो...?”

कि जाते-जाते रघु ने फुसफुसाने की तरह कहा, “अरे! सुना है, गेहूँ में छिड़काव करनेवाली दवा की खाली बोतल उसके सिरहाने मिली है।” एकबारगी गहन सन्नाटा पसर गया।

रघु के कुछ पल बाद सदन और रोहित भी चले गए। बुत की तरह खड़े देवजी पत्थर हो गए थे।

सूर्योदय होते-होते देवजी सुकेश के यहाँ पहुँचे। तब तक पूरा टोला और उसके आँगन-दालान में उमड़ आया था। आँगन से रुदन का शोर पसर रहा था। दालान पर सब-के-सब हतप्रभ थे।

कफ़न आ गया था। लकड़ियाँ काटी जा रही थीं। अभी अर्थी उठने की तैयारी चल रही थी कि

अचानक थाने के दो सिपाही नमूदार हुए, “का भई, का मामला है?”

“जी हुजूर, सुकेश मर गया। उसी के दाह-कर्म की तैयारी हो रही है।” एक बुजुर्ग से व्यक्ति ने कहा।

“मर गया या मारा गया है?” एक सिपाही ने कड़क आवाज़ में पूछा और आँगन की टूटी दीवार से सीधे नज़र आ रही छाती पीटकर रोती सुकेश की विधवा की छातियों में छेद करने लगा था।

“क्या कहते हैं, हुजूर?... किसने मारा?”

“यही तो तहकीकात का मामला है। ज़हर-विष वाला केस बड़ा भयंकर होता है। अभी रुको, दारोगा साहब भी आ रहे हैं।”

“ज़हर-विष वाला केस?... ”

“पुलिस से बात छिपाते हो?... उसकी औरतिया को बुलाओ। चूतड़ पर डंडा पड़ेगा, तो बकबक बोलेगी। छिनरपन का मामला होगा।” दूसरे सिपाही ने जाल फैलाया।

“क्या कहते हैं, हाकिम! ऐसी बात हम ग़रीबों के घर नहीं हाती। हमलोग इतने गिरे परिवार वाले नहीं हैं।” एक वृद्ध ने प्रतिवाद किया।

कि बुलेट की आवाज़ सुनते हुए पहले सिपाही ने कहा, “सो दारोगा साहब भी आबिए गए हैं। उन्हीं को बताइएगा।” कुछ ही क्षण बाद हवलदार के साथ बुलेट से उतरे दारोगा ने कड़क आवाज़ से पूछा, “क्या तिवारी जी, सिंह जी, क्या पता चला?”

क़रीब आते तिवारी जी तपाक के बोले, “ज़हर-विष का मामला लगता है, सर। शक औरतिया पर बनता है। बदचलनी वजह हो सकती है।”

उसी क्षण प्रकट हुए सत्यनारायण ने हस्तक्षेप किया, “ग़रीब-गुरबा पर ऐसा इल्जाम लगाते हैं, सर!... यह तो घाव पर नमक रगड़ना हुआ।”

“देखिए, ज़्यादा चालाकी कीजिएगा तो पूरा टोला फँस जाइएगा। जब दौड़िएगा सुपौल कोर्ट, तब सुझेगा।” दारोगा की दहाड़ थी, “चलिए, लाश दिखाइए।”

घर-आँगन होते, लाश का मुआयना कर दारोगा-सिपाही के वापस दालान पर आने तक वातावरण में दहशत और आक्रोश का मिला-जुला असर व्याप गया था। आक्रोश से भरा एक युवक सत्यनारायण के क़रीब पहुँचा, “कका जी, कराने दीजिए इन्हें पोस्टमार्टम। ज़हर पिया, आत्महत्या की। आखिर ऐसा क्यों किया उसने? सरकार की तरफ़ से हम पर थोपे गए कम्पनी वाले बीजों के कारण बर्बाद हुई फ़सल की चिंता में! सरकार और सरकारी कारनामों की पोल खुलेगी। मैं अभी किसी के मोबाइल से अखबार वालों को फ़ोन करता हूँ।”

लेकिन भीतर से डरे हुए टोलेवाले कुछ बोल नहीं पाए। दारोगाजी युवक की बातों को अनसुना करते सत्यनारायण से मुखातिब हुए, “मामला तो गंभीर बनता है, भई!” फिर पीछे आने का इशारा कर मंडली को वहीं छोड़ ख़ुद सड़क की तरफ़ बढ़ गए।

क्षणभर बाद सत्यनारायण दारोगा के पीछे लग गए। दारोगा कुछ बुदबुदाए। सत्यनारायण लौटकर दालान पर जमा लोगों के बीच आए। तीन और बुजुर्गों को लेकर वे फिर दारोगा के पास पहुँचे। फिर काफ़ी देर तक मंत्रणाएँ हुईं। मगर बात नहीं बनी। फिर दो जनें लौटकर सुकेश के छोटे भाई महेश के पास आए।

महेश से कुछ पूछताछ कर वे दोनों टोले से बाहर हो गए।

क्ररीब बीस-पचीस मिनट बाद टोले से बाहर गए दोनों जनें श्याम बाबू के साथ वापस आए। श्याम बाबू के साथ दारोगा की विशेष मंत्रणा क्ररीब दस मिनट में संपन्न हुई। दारोगा की तरफ़ श्याम बाबू ने पाँच सौ के पाँच करारे नोट बढ़ाए।

अखबारवालों से बात करने को प्रयासरत युवक को सफलता नहीं मिली थी। ज्यादातर मोबाइल का बैट्री चार्ज नहीं था। एक का चार्ज भी था, तो उसका नैटवर्क 'बिजी' था।

इसी बीच सुकेश की स्वाभाविक मौत का पंचनामा तैयार हो गया था। दारोगा-सिपाही चले गए थे।

कुछ देर बाद सुकेश की अर्धी उठी। राम-नाम सत्य है!... आँगन में दहाड़ मारकर रोने की आवाज़ और तेज़ हो गई थी।

शाम गहरा रही थी। सुकेश को जलाकर घाट से भीगे कपड़े में लौटे देवजी टंड से बुरी तरह काँप रहे थे। कपड़े बदल, कम्बल ओढ़कर वह सीधे चूल्हे के पास आ गए थे।

घर-आँगन गोबर से ताज़ा-ताज़ा लिपा हुआ था। सीमा नहाकर चूल्हा जला रही थी। सीमा के पास ही तुरंत नहाकर आई रोमा खड़ी-खड़ी काँप रही थी। माला को अभी एक-दो बरतन धोना रह गया था। इसक बाद ही वह नहा सकती थी।

चूल्हा जल गया, तो सीमा ने उस पर अल्हुआ उबालने के लिए डेगची चढ़ा दी। उसके बाद भी कुछ देर तक देवजी चूल्हे के पास बैठे रहे। फिर थोड़ी आग लेकर बाहर के बरामदे पर अलाव जलाने आ गए थे।

कुछ देर में अलाव की गर्मी पाकर देवजी के बदन की टंड कम हुई थी। कँपकँपी अब उतनी नहीं थी। लेकिन उनके दिमाग में जो हौलनाक बवंडर चल रहा था, वह ज़रा भी स्थिर नहीं हुआ था। दरअसल देवजी मुन्ने के क्रिया-कर्म के बाद गेहूँ में छिड़कने के लिए लायी गई दवा पीने के फ़िराक में थे। रोज़ कुछ-कुछ-न सोच वह एक दिन के लिए इस विचार को आगे खिसका रहे थे। लेकिन ऐसा कहाँ सोचा था उन्होंने कि सुकेश सा जिंदादिल इन्सान इस काम में भी आगे हो जाएगा!...

सुबह-सुबह देवजी को जब सुकेश की मृत्यु की असलियत का पता चला, तो उन्हें आत्मबल मिला था। उसके बाद गेहूँ में पानी पूरा करने से रामफल के खेत मशीन पहुँचाने तक उन्होंने रात का अपना प्लान बना लिया था। दवा तो पिछले साल वाली पश्चिमी दीवाल के पास गड़ी हुई थी। बस आखिरी दिन सबके साथ बिताना था!... लेकिन सुकेश के दलान पर अर्धी उठने के पहले जो उन्होंने पुलिसिया नाटक देखा था, उसने उसके मंसूबे पर पानी फेर दिया था।

अपनी मौत की कल्पना के साथ ही देवजी के सामने छाती-पीटती माला कौंध जाती। इसके साथ ही उनके दालान पर एक बुलेट मोटरसाइकिल रुकती। एक पुलिसिया नज़र माला को नग्न करते तेज़ी से हरकत में आती। फिर आती एक खौफ़नाक आवाज़, “किसी यार के चक्कर में इस छिनाल ने ही रास्ता साफ़ किया होगा!... ले चलो थाना!... वहाँ जब बेलन चलेगा, खपरी टनटन बोलेगी!... ”

फिर कौन-कौन तिकड़म होगी और ऊँट किस करवट लेगा, इसकी कल्पना देवजी की रूह कँपा जाती थी।

कभी वह सोचते कि पहले रोमा, सीमा और माला के गले रेत दें फिर अपनी जीवन-लीला खत्मकर लें। मगर हँसती-खेलती फूल-सी बच्चियाँ जिनको कभी जोर से थप्पड़ तक नहीं लगाए उनके गले रेतने का साहस कहाँ से लाएँगे?... और माला! जिसके ऊपर हमेशा अपनी जान न्यौछावर करते रहे, उसकी जान लेंगे?... और यही परेशानी थी कि उनके भीतर बवंडर का रूप ले चुकी थी।

इन्हीं खयालों और हौलनाक बवंडर को झेलते अलाव अगोरे बैठे थे देवजी कि अंधेरे के बीच सीमा की आकृति खाने के लिए बुलाने आ गई। देवजी का ध्यान भंग हुआ। क्षणभर वह असमंजस की स्थिति में बैठे रहे। पेट में मरोड़ जरूर थी, मगर भूख-प्यास की कोई सुध नहीं थी। खड़े होकर वह आँगन की तरफ बढ़ रहे थे, तो उन्हें लगा जैसे हवा में उड़ रहे हों!...

जैसे-तैसे देवजी आँगन पहुँचे। दीवाल के सहारे पीठ टेक वह पीढ़े पर बैठे ही थे कि सामने थाली आ गई। थाली में दस के करीब उबला अल्हुआ, बगल में थोड़ा नमक और दो हरी मिर्च एक अजीब तरह का चित्र बना रहा था! थोड़ा हटकर जहाँ माला मिट्टी के एक बरतन में रखी आग ताप रही थी, वहीं बैठी सीमा और रोमा थाली के अल्हुए पर इक क़दर टूट पड़ी थी जैसे कुत्ते जूटन पर!

क्षणभर बाद चारों तरफ नज़रें फेरकर देवजी बोले, “माला, तुम भी लो न! एक साथ ही खाते हैं। कई दिनों से तुमको कुछ खाते देखा नहीं है!...”

“आप खाइए न! मेरा ढककर रखा है। बाद में खाऊँगी।” माला ने सहज ढंग से कहा।

“नहीं माला, मेरी क़सम है! साथ ही खाओ!” देवजी का स्वर भीगा हुआ था।

माला क्षणभर जड़वत् बैठी एकटक देखती रही। फिर उसने हाथ बढ़ाकर बगल में डगरा से ढककर रखी थाली खींच ली। उसमें चार-पाँच अल्हुआ और नमक के साथ चार हरी मिर्च थी। माला ने पहला अल्हुआ उठाया ही था कि रोमा बोली, “माँ, मैं और खाऊँगी!”

“चुप्प!... अब नहीं है।” सीमा ने सहमते-सहमते कहा।

माला कुछ बोल नहीं पाई। हाथ का अल्हुआ उसने रोमा की तरफ फेंक दिया। खुद दूसरा अल्हुआ उठाकर खाने लगी।

देवजी जो अभी तक यूँ ही बैठे थे, उन्होंने अपनी थाली से दो अल्हुए उठा हाथ बढ़ाकर माला की थाली में डाल दिए। कि माला चीख पड़ी, “मुझे क्यों दिए हैं?... मुझे यही नहीं खाया जा रहा था और आप हैं कि...”

“माला!...मेरी क़सम है, माला!” देवजी का संयत स्वर।

माला ने आँखों से ढुलक आए पानी छुपाने की असफल कोशिश की। अगले ही पल फिर खाने लगी।

देवजी भी खाने लगे थे। कुछ पल बीते होंगे। दोनों हरी मिर्चों के साथ सी-सी करते पानी पी रहे थे। अचानक देवजी ने पूछा, “आज कोई साग नहीं मिला क्या?”

“आप भी कौन मनुक्ख हैं! किसी को जलाकर आते हैं, तो साग खाया जाता है?” अरसे बाद माला के स्वर में हास्य का सा हल्का पुट उभरा था।

“ओ!... मुझे तो आजकल कुछ होश ही नहीं रहता है!...”

फिर खाना खत्म होने तक कोई कुछ बोला ही नहीं।

हाथ धोने के बाद जब देवजी दालान की तरफ वाले ओसारे को चलने लगे, तो माला बोली, “बाहर ओस बहुत गिरता है। ओसारे में कितनी ठंड लगती है। घर में ही सोए न। मत जाइए वहाँ।”

वह तब भी न रुके तो माला ने तेजी से ड्योढ़ी तक बढ़कर उनका हाथ पकड़ लिया। क्षणभर रुककर देवजी बोले, “तुम सब सोओ न! आ जाऊंगा थोड़ी देर में...”

माला ने हाथ छोड़ दिया। देवजी कुछ पल वहीं खड़े माला की ओर देखते रहे। अंधेरे में भी देवजी को माला के चेहरे का भाव पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई।

देवजी जब बड़ी देर तक कुछ बोले न हिले, तो माला ने मुँहफेर लिया। आखिर न चाहते हुए भी देवजी दालान की तरफ डेग बढ़ाने लगे। उनका बुझा-बुझा-सा स्वर आया, “आ जाता हूँ, कुछ ही देर में...”

फटी-पुरानी कथरी ओढ़ दोनों बच्चियाँ लेट गई थीं। रोमा की तो नाक भी बजने लगी थी। किवाड़ भिड़काकर अपनी कथरी ले माला भी अपनी जगह लेट गई। दिनभर की भूखी-थकी माला पलकें जल्दी ही बोझिल होने लगी थीं। फिर भी वह देवजी की प्रतीक्षा में जगने का प्रयास कर रही थी। लेकिन अधिक घंटा बीता होगा कि उसकी आँखें भी लग गईं।

उधर ओसारे पर अलाव अगोरे बैठे देवजी इ उधेड़बुन में थे कि मरें कैसे!... जहर पीकर माला के लिए आफत नहीं बनना चाहते थे। आखिर क्या करें? जिएँ तो जिएँ कैसे?... उन्हें लगा, जीना जितना कठिन है, मरना भी उससे कम मुश्किल नहीं। तो...?

अलाव का प्रभाव खत्म हो गया था। ठंड फिर कँपकँपाने लगी थी। देवजी के भीतर अब कुछ और सोचने की सामर्थ्य नहीं बची थी। पश्चिमी दीवाल के पास गड़ी दवा पी नहीं मरेंगे वह, बिल्कुल नहीं!... आखिर कमरे में जा माला की देह लगकर सोने का उन्होंने निश्चय कर लिया।

माला का खयाल आते देवजी उसी में खो गए थे। उसी हाल में वह उठने लगे थे, मगर खड़े नहीं हो पाए। पीठ अकड़ गई थी और दाहिने भाग में, सिर से पाँव तक, दर्द की एक पतली लकीर रेंगती महसूस हुई। क्षण भी नहीं बीता होगा कि उस भाग में झुरझुरी-सी पैठने के साथ अचानक दर्द बढ़ने लगा था। देवजी के प्राण व्याकुल हो गए। उन्होंने पूरी शक्ति लगाकर उठने का प्रयास किया। ठीक से सीधा भी नहीं हो पाए थे कि कटे गाछ की तरह गिर पड़े। असहनीय दर्द और कँपकँपी सर्वांग में फैल गई जैसे! वह बमुश्किल एक हाथ और एक पैर हिला पा रहे थे। उन्होंने खूब जोर लगाकर माला को पुकारना चाहा, मगर आवाज़ नहीं निकली। वह बार-बार चीखने की असफल कोशिश भर करते रह गए!...

कोहरे भरी माघ की रात और सर्द होती चली गई थी।...

कमरे में माला की कथरी जब ठंड को रोक नहीं पाई, तो जाड़े के प्रभाव से उसकी नींद टूट गई। नींद टूटते उसने अंधेरे में अगल-बगल हाथ में कुछ टटोलने का प्रयास किया, मगर खालीपन ही हाथ आया। घबड़ाकर वह उठ गई। “हे भगवान, किबाड़ भी खुला ही रह गया।” भनभनाती हुई वह बाहर निकली। पेशाब से निवृत्त हो वह दालानवाले ओसारे की तरफ बढ़ी थी। अभी करीब पहुँची ही थी वह कि देवजी के गले से आती घरघराहट और एक हाथ-पैर की छटपटाहट ने उसके होश उड़ा दिए। दोनों हाथों से पकड़ उन्हें उठाने का प्रयास करती माला चीखने लगी थी, “सीमा के बाबू! सीमा के बाबू!... उठिए तो! एँ, क्या

हुआ? बोलिए तो कुछ!... सीमा के बाबू!...”

बाँहों में देवजी को थामे माला बदहवास हो गई थी। उसने वहीं से सीमा और रोमा को जोर-जोर से आवाज़ लगाई। बच्चों के आने तक पड़ोस के सत्यनारायण और जयनारायण के घर के लोग भी जग गए थे। फिर तो जल्दी ही कई औरत-मर्दों की भीड़ जमा हो गई।

पहले तो लोगों को सुकेश जैसी घटना की आशंका हुई थी। लेकिन स्थिति साफ़ होते देर नहीं लगी। कुछ लोगों ने झटपट आग जलाई। माला सहित कई औरतें लहसन के साथ पकाए गरम तेल से मालिश शुरू कर चुकी थीं। बाक़ी भीड़ उसकी हालत पर तरह-तरह से टिप्पणी करने में मशगूल थी।

काफ़ी देर की सेंकाई और मालिश के बाद देवजी के गले की घरघराहट और बदन की कँपकँपी तो कुछ कम हुई, लेकिन वह होश में नहीं आ पाए। फिर लोगों ने ओसारे से उठाकर उन्हें कमरे में पहुँचा दिया था। वहाँ भी आग जल गई थी। सेंकाई और मालिश जारी थी।

कुछ देर बाद कई लोग यह कहते अपने-अपने घर सोने चले गए कि ‘कोई चिंता की बात नहीं!... अब ठीक हो जाएँगे!’ मगर माला के साथ सेवा में लगी कुछ औरतें रातभर वहीं रहीं।

पहाड़-सी रात जैसे-तैसे बीत गई थी। सुबह होते बारी-बारी टोलेभर के लोग आ-जा रहे थे। देवजी की देह ज़रूर गरमा गई थी। और कँपकँपी भी थम गई थी, मगर होश में वह अभी तक नहीं आए थे। तभी कुछ लोगों ने डाक्टर बुलाने का प्रस्ताव रखा था। दो लड़के शिव झा के घर की तरफ़ दौड़ाए गए।

अभी डॉक्टर नहीं आए थे। कुछ और शुभचिंतक ही पहुँचे थे। उसी दौरान पहुँचे हवेली के श्याम बाबू ने मुँह के करीब जाकर पुकारना शुरू किया, “देवजी!... देवजी!... आँखें खोलिए देवजी!... देवजी!...” कि अचानक देवजी की आँखें खुल गईं। वह एकटक श्याम बाबू की तरफ़ ताकने लगे। कि श्याम बाबू का संकेत पाकर औरतों ने माला को सामने कर दिया...।

अब देवजी एकटक माला को ताक रहे थे। एकदम से झुक आई माला भी एकटक उनकी आँखों में आँखें डाले हुई थीं कि देवजी की आँखों से एकाएक आँसू की कुछ बूँदे ढुलक गईं। चेहरे पर माफ़ी-सा माँगने का भाव झलक रहा था। बायाँ हाथ उन्होंने उठाने की कोशिश की थी शायद जो हिलकर रह गया था। मुश्किल से कुछ पल बीते होंगे कि आखिरी बूँद में खून की सी लाली ढुलकी और अगले ही पल सिर एक तरफ़ लुढ़क गया था।

श्याम बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा, “उड़ गई पंछी!...”

औरतों ने माला को पकड़कर अलग किया। पत्थर हो गई थी माला!... रोती-सिसकती औरतों ने उसकी चूड़ियाँ तोड़ डाली। सिउथ पोंछ डाला!... मगर माला की रूलाई नहीं फूटी। उसको दाँती लग गई थी।

## बीज-भोज

सुन मेल सगरे घर आँगन  
परती भेल खेत-पथार।  
सगरे साही-गोखला उगल  
जपाल भेल जीव-जंजाल।

माला के मायके से उसके बड़े भाई मधुकान्तजी आए थे। उनकी देख-रेख में देवजी का श्राद्धकर्म संपन्न हुआ। एकादश और द्वादश को निकट संबंधियों के अलावा पूरे टोलेवालों ने जमकर भोज खाया। पंडित-महापात्र गठरी बाँधकर चले गए।

तेरहवीं को निकट संबंधियों के अलावा कार्यकर्ताओं को मांस-मछली का भोजन भी दिया गया।

अगले दिन तक सारे न्योताहारी चले गए। देवजी की बहनों की भी विदाई हो गई थी। रुक गए थे सिर्फ मधुकान्त जी। उन्होंने चौदहवें दिन सत्यनारायण भगवान की पूजा-कथा भी संपन्न करवा दी थी। लेकिन उनकी जिम्मेदारी तब भी संपन्न नहीं हुई थी। सगे-संबंधियों के मामूली सहयोग के बावजूद पंद्रह हजार का ऋण चढ़ गया था। उसके एवज में श्याम बाबू को तीन कट्टा जमीन केवला करना बाकी था। इस रस्म को पूरा किए बगैर मधुकान्तजी को फुर्सत कहाँ थी?...

पंद्रहवें दिन दोपहर का भोजन करके मधुकान्त जी खतियान, मालगुजारी रसीद वगैरह लेकर श्याम बाबू के घर की तरफ चले गए थे। अगले दिन केवाला होना था, से कागजी बुझौवल जरूरी थी।

आँगन के ओसारे में देहरि लगकर माला अकेली बैठी थी। डूबने जा रहा सूरज धूप का एक टुकड़ा उस देहरि पर फैलाये हुआ था। धूप के उसी टुकड़े के बीच में बैठी माला की नजर अचानक कमरे में क्रतारबद्ध छोटी-छोटी कोठियों पर गई। कोठियों का मुँह खुला हुआ था। कोठियों की यह हालत देख उसके बदन में लहर पैठ गई। उसने जोर से सीमा को आवाज लगाई। आवाज इतनी तेज थी कि आँगन में बैठी रोमा के सिर में जूँ हेर रही सीमा घबड़ा गई। वह दौड़कर नजदीक आई, “क्या हुआ, माँ?”

“इन कोठियों का मुँह किसने खोला? इसके धान...?”

“इसके धान तो छाउर-कर्म के दिन ही श्याम बाबू ने निकलवाकर चूड़ा कुटवा दिया था।”

क्षणभर की चुप्पी के बाद माला ने कहा, “जल्दी से मिट्टी गुँथकर इनका मुँह बंद करो।”

फटे-पुराने चिथड़े डालकर ऊपर से मिट्टी की लेप लगा रही थी सीमा कि अनायास उसके मुँह से निकला, “अब तो खेती लायक जमीन भी नहीं बचेगी।”

“क्यों?... फिर भी एक एकड़ से कुछ ज्यादा ही बचेगी।” माला का आत्मविश्वासी स्वर था।

“मगर धान तो नहीं ही रोपाएगा न!” सीमा ने जैसे कोठी से कहा।

माला तुरंत बोल पड़ी, “देखना आषाड़ में जब धरती की कोख फुलाएगी!... बीजखौका सबसे अच्छे धान लहलहाएँगे अपने खेत में...।” मगर उसके शब्दों का खोखलापन किसी को क्षणिक संतोष भी नहीं दे पाया।

सीमा कुछ कहे बिना माटी लगे हाथ की अँगुलियाँ एक-दूसरे से उलझाती कहीं खो गई थी। माला के सामने सघन अंधेरा छा गया। उस अंधेरे में धीरे-धीरे गायब होती खाली कोठी का गीला मुँह भी धुँधलाने लगा था।

---

गौरीनाथ, वास्तव में लोकजीवन के सभी पहलुओं का गहरा स्पर्श करने वाले कहानीकार हैं। भटकते और डूबते जीवन का उन्होंने मार्मिक चित्रण किया है। पहल के पिछले अंकों में छपी लोकबाबू और चन्दन पांडे की कहानियों की ही तरह भारतीय किसान के नर्क को वे अपना विषय बनाते हैं। गौरीनाथ ने अपना स्वतंत्र प्रकाशन स्थापित किया है। और एक पत्रिका के संपादक भी हैं।

## जंक्शन

मुझे नहीं जानने वाले इस अफवाह की भरपूर लपेट में हैं जिसे मेरे गांव-गिरांव वालों ने प्यार में उड़ाई है। उन्हें लगता है यह अफवाह ही मेरी जीत है। ये गिरफ्तारी उन्हें अपनी पराजय लगी है। अफवाह ये है कि जिलाधिकारी मैडम के इश्क में मुझे जेल हुई है। मेरे प्रेम का मिथक इतना धाँसू और तरार है कि सच्ची सूचनाएं भी इसके जाल में फँस गई हैं।

गाँव गाँव घूमकर मनई बाबा का चौरा बँधवाते हफ्ता हो गया था, जब मैडम के दरबार में हाजिरी बजाने का पहला फरमान मिला। 'यह काम मैं छोड़ दूँ' इस सिलसिले के डराऊ आदेश मुझे लगातार मिल रहे थे। शासन वालों ने मनई बाबा को गिरफ्तार करने का आदेश भी चला रखा था। बार बार पुलिस के लोग मुझसे उनका सुराग पूछते पर जब मैं सच्चाई पर उतर आता तब वो बुरा मान जाते थे।

दूसरी ओर मेरे अपने जवार के लोगों का ऐसा आग्रह था कि मना करना मुश्किल था। दबाव से ज्यादा यह मेरा किरदार था। मैं अकेला नहीं था। दसियों जनें थे जो चौरा बँधवाने का काम कर रहे थे। सबकी जिम्मेदारियाँ थीं। मेरे जिम्में मनई बाबा का किस्सा बाँचने का काम था। इसलिए जिलाधीश मैडम से मिलने जाते हुए मैं डरा हुआ था। हम दस थे पर भीतर सिर्फ मुझे भेजा गया।

कुर्सी पर सुन्दर स्त्री को देखकर मेरा आत्मविश्वास लचक गया पर राहत भी हुई। एक झटका ख्याल यह आया कि डरावने और जान लेवा ओहदों पर ऐसी चुनी-भली स्त्रियाँ ही क्यों न हों। मैडम की खूबसूरती मुझ पर छाने लगी पर उस भली मानुष ने मुझे डराने में कोई कसर जो छोड़ी हो - आदेशों का पालन करें - मामला राजनीतिक न हुआ होता तो अब तक जेल में होते-होगी तो लम्बी सजा होगी -

मैं उनकी बातों को पूरी तरह सुन रहा होऊँ, ऐसा कैसे हो सकता था। हवा में नींद आने भर की खुनक मौजूद थी पर मैं सो भी नहीं रहा था। मैं अपने बेकल अंतस का अपराधी हूँ। मिलने वाला हरेक मुझे बार-बार मेरे अपराध की याद दिलाता है। मनई पर हुई एक बात भी मुझे डरा जाती है। मैंने बेचैन होकर कहा- मैडम, मुझे सजा मिल जानी चाहिए। मेरा अपराध उस नदी का अपराध है, जिसमें अभी अभी एक आदमी डूब गया है।

इस एक बात पर वो चुप हो गई। उनका अनार जैसा छोटा मुँह खुला रह गया। बहुत बाद में पता चला कि इस मामले में उनकी भिड़त जिले के सबसे बड़े पुलिस अधिकारी से भी है और मैडम मुझे अपने हथियार की तरह बाकायदा रेत रही हैं। पर उस दोपहर उनका खुला छोटा मुँह देखकर यही लगा था – मुझे उन्हें चूम लेना चाहिए। मैडम ने मुझे जवाब दिया – अब तुम जा सकते हो।

अगले दिन जिस गाँव से हमारा निमंत्रण था, वहाँ चौरा बाँधने की तैयारियों में विलंब था। इसी उधेड़ में मैंने जिलाधीश साहिबा से अपनी मुलाकात की दर्दिली बात बताई। आने वाली सजाओं से आगाह किया। कुछ फंटूशों को बताया – मैडम क्या कमाल थी! एक झूठ भी डाल दिया – मैं उस देवी के दर्शन के लिए ही सजा पाना चाहता हूँ। इन प्यारों ने यह बात फैला दी, जिसे सबने इस गाढ़े समय में हल्की मुस्कुराहट से लिया।

अब जबकि मैं गिरफ्तार हूँ, मेरे लोगों को यह गिरफ्तारी अपनी हार मालूम पड़ रही है। अपनी पराजय को हल्का ठहराने के लिए इन लोगों ने यह खेल कर दिया। यह एक दो नहीं, जिले के सभी गाँवों में एक साथ घटा है। शासन की सूचनाओं और अफवाहों पर यह अफवाह बीस छूटी है – अंजनि प्रसाद को डी.एम. मैडम से छेड़छाड़ के आरोप में गिरफ्तार किया गया है अब मेरी नई मुश्किल यह है कि मैं मैडम से माफ़ी माँगना चाहता हूँ।

मेरी गैरहाजिरी का भी तोड़ निकल आया है। उपाय वही है जो मैं शुरू से बताता रहा था। पहले ही दिन से मेरी इच्छा थी कि दूसरे लोग मुझसे सीख लें। इस किस्से से मैं बचता हूँ। इसे दुहराते हुए मैं खुद को आत्मा के कटघरे में पाता हूँ। मैं ऐसा अँधेरा ढूँढ़ने लगता हूँ जहाँ ख्याल भी मेरा साथ छोड़ जाए। जितनी बार मैं इन बातों को दुहराता हूँ, अपनी तय की सजा की मियाद बढ़ाता चला जाता हूँ। मैंने अर्जी रखी थी – दूसरे लोग मुझसे सीख लें। पर ऐसी सनक व्याप गई थी कि लोग मुझसे ही सुनना चाहते हैं। मेरे प्रत्यक्षदर्शी होने को ही प्रमाण मान लिया गया है।

जिस रफ्तार से मनई बाबा के चौरा बाँधे जा रहे थे, वैसे में दस अंजनि तो इस जिले में ही चाहिए जिन्हें इस दुःख का ज्ञान हो। खुदा-न-खास्ता अगर ये बुखार पूरे देश में फैल गया तब कितने चाहिए? राय बनी थी – किस्सा मैं ही सुनाता रहूँ पर अब ये दर्ज भी हो। अखबारों में कूवत की थोड़ी कमी थी इसलिए उनसे ये बात संभल नहीं पा रही थी। सारे काम चलते रहे और हमने बनारस से एक लेखक बुलाया। कुछ ढीला ढाला सा उनका नाम था। गाँव तक आए। मुझे बहुत तैयारी करनी पड़ी। चौरा बाँधवाते हुए ये किस्सा सुनाना फर्ज की तरह लगता है इसलिए तकलीफ कम होती है। यहाँ मुझे यों ही सुनाना था। सुनाया। पर किस्सा सुनते ही लेखक बाबू तीन पाँच करने लगे। कहने लगे-आज तक इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ- किस्सा तर्क पूर्ण होना चाहिए – सच्चा लगना चाहिए – कोई भी घटना आपस में जुड़ती नहीं है – नाम का बखान है – वजह कुछ और भी है जो आप बताना नहीं चाहते – तामाम तामाम।

उनके बेटुकेपन पर गाँव जवार के लोग तैश खा गए। किसी ने झपटा भी मारा पर बाकी सबने संभाल लिया और सबने पानी पी पी कर समझाया – बहुत इतिहास बघारने वाले हुए हो – देगें खींच के कान के नीचे एक चमेटा, इतिहास बनकर रह जाओगे – लेखक कहीं का-।

मैं उन्हें शाहपुर जंक्शन तक छोड़ने आया था। उनके थैले को साईकिल से बाँधते हुए एक उदास एहसास हुआ। वो मेरे गाँव के सुमेर की उम्र के रहे होंगे। चौड़े मेड़ों से गुजरती साईकिल पर मैंने उन्हें बताया- मेरे गाँव में एक सुमेर था, को आपकी ही उम्र का रहा होगा। मुझे अच्छा ही लगा कि वे इसी जिले से हैं। उन्होंने वो सारी जगहें देखने की इच्छा जताई, जो किस्से में आई थी। पर मैं तुरंत में लखनऊ कैसे दिखा

सकता था? मैं तो एक रात तक नहीं दिखा सकता था जिस रात हम शाहपुर जंक्शन पर थे फिर भी मैंने वो इमारत उन्हें दिखाई जहाँ हमारे इलाके का बैंक था और जिसे वहाँ से हटा दिया गया था। उन्होंने आश्चर्य जताया। बताया, देखने के बाद भी उन्हें भरोसा नहीं हो रहा है कि बैंक हटा दिया गया है। वो सुमेर के बारे में पूछते रहे, पर समय कम था।

इण्टरसिटी एक्सप्रेस में देर थी। बनारस के लिए कोई दूसरी रेल इतनी लेट थी कि वो प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने उन्हें जगह लेने को कहा और भागकर जरूरी टिकट ले आया। उन्होंने हमारी आत्मीयता की कद्र की और इस मुश्किल सवाल से उलझे रहे - टिकट के पैसे दें या न दें। मैंने ही उन्हें मना किया। अपने मन की एक बात मैंने बतानी चाही पर हमारे बीच का छोटा सा नाता उस जोड़ पर छूट रहा था जहाँ से शानदार स्मृतियाँ शुरू होतीं। रेलगाड़ी चलने लगी थी और मैंने अपने मन की बात उन्हें नहीं बताई : इतिहास की समूची घटनाएं कभी पहली बार ही घटी होंगी।

अब जबकि मुझे जेल जाना है, मैं तेरह फ़र्द बहादुरों से मुखातिब हूँ। शाहपुर जंक्शन पर ये लोग मुझसे मिलने आए हैं। मैं पुलिस वालों के साथ हूँ। मुझे मोटी रस्सी की प्रतीकात्मक जंजीर लगाई गई है और पुलिस वालों ने अपने साथ मेरे लिये भी चाय मँगाई है। काली चाय। पुलिस के लोग नहीं चाहते कि मैं किस्सा सुनाऊँ पर भीड़ थोड़ी बड़ी है। मैं हड़बड़ी में हूँ पर नुक्ते-दर-नुक्ते यह किस्सा मैं सुना रहा हूँ। यह मेरा अपराध से बरी होना है। ये तेरह लोग तेरह दिशाओं की कमान संभालेंगे। मैं हड़बड़ी में हूँ क्योंकि दिल्ली जाने वाली कोई भी रेल आएगी और उससे मुझे लेकर ये लोग जिले पर जायेंगे। इस दिशा में जाने वाली रेल मेरे गाँव को चीरती हुई जाती है पर वहाँ कोई स्टेशन नहीं है। दूसरी रेल बनारस और मुम्बई की ओर निकलती है। तीसरी रेल मुजफ्फरपुर और दरभंगा के गाँवों की ओर जाती है जहाँ से इस कथा में पवन एक्सप्रेस आएगी।

सुने के लिये मेहरबानी आपकी कि जर जमा तीन हादसों के सिलसिले थे जिसमें चार बड़े वर्ष और न जाने कितने लोग खाक हुए। इन वाक्यों में मेरी हिस्सेदारी दस पंद्रह मिनट से ज्यादा रही हो इसकी गुंजाईश कम है। जाने अनजाने की यह हिस्सेदारी ही मेरा अपराध है।

मैं था और सुमेर के पिता थे। सुमेर का हाईस्कूल में गलत पंजीयन का मामला था और हम गोरखपुर से बनारस जा रहे थे।

सुमेर के लिए मेरी तरफ से भी एक फूल रखें : वो हमारी यादों में वैसा ही तंदुरुस्त है। उतनी ही रफ्तार से दौड़ लगाता है जैसी वो फौजी भर्तियों में लगाना चाहता था। उस दिन सुमेर के पिता ने मुझे साथ ले रखा था। उन्हें लगता था मैं सरकारी दफ्तरों में बात कर लेता हूँ।

दूसरी ओर, मैं निठल्ला था और बर्बाद हो रहे अपने हर पल की ओर मायूस देखता था। मेरा समय मुझसे ही बेकाबू निकला। हर पल मैं कुछ न कुछ करते रहने की सोचता था। उद्देश्यहीन ही सही पर मुझमें एक शानदार गति थी। मैं किसी के लिए भी तत्पर; हर क्षण तैयार। एक मेरी माँ के सिवा कोई मुझे समझ न रहा हो, ऐसा भी नहीं था और मैं बनारस जा रहा था। पाँच घंटे का सफर था जो हमें पराजित कर गया।

हो सकता है विलंब की वाकई कोई जरूरी वजह रही हो क्योंकि उस दिन भी इण्टरसिटी एक्सप्रेस, गोरखपुर से तीन घंटे देर कर खुली। भीड़ थी। हर छोटे बड़े ठहराव पर रुकती गाड़ी में उमस से बदबू फैल गई थी। रोजाना के सवारी झुंड में थे। उनका दंभ अलग, शोर अलग था।

गाड़ी चलती तो हवा बेहद अच्छी लगती थी। लगता था जैसे किसी की याद आ रही हो। मैंने बहुत कोशिश की ताकि पता चला सके, मुझे कौन याद आ रहा है? बचपन के जलते प्रेम को छोड़ दूँ तो मेरी याद के लिए सजीली नायिकाएँ भी नहीं थी। मैं असफल रहा और उस अनजाने को याद करता रहा।

मौज तो तब मची जब गाड़ी शाहपुर जंक्शन पर खड़ी हुई। रात का ग्यारह अभी अभी बजा था और गाड़ी साढ़े पाँच घंटे देर कर चुकी थी। यात्री परेशान थे पर मैं अनूठे उत्साह में उलझ गया। ये जंक्शन मेरे गांव-घर का स्टेशन है। कहीं आने जाने के लिए सबसे मुफीद स्टेशन। पहला मौका था जब शाहपुर जंक्शन पर उतरते हुए मुझे गांव नहीं जाना था। एक यात्री की तरह अपना ही स्टेशन पार करना था। मुझे अजीब एहसास हुए। रात के वक्त अपने जंक्शन के प्लेटफार्म पर इधर उधर करने का अलग स्वाद था। चाहने वाले इस चाह में थे कि धीमी रफ्तार से ही मगर गाड़ी चलती रहे। मेरे मन में कुछ दूसरा था।

इतनी रात गए इस बात की संभावना शून्य थी कि मेरे गांव के लोग यहां मिलें। फिर भी मैं ऐसी इच्छा से घूमना चाहता था। प्लेटफार्म की सैर। आश्चर्य कि लगभग पचासों पहचाने चेहरे दिखे। आँखों और मुस्कुराहटों से सलाम-बंदगी करता मैं आगे बढ़ता रहा। रेलगाड़ी के बीचकी बोगी की खिड़की से महबूब मिस्त्री दिखे। उनकी बोगी के पास प्लेटफार्म का पाट चौड़ा और खाली था। बेचैन कर देने वाला खालीपन। पीले प्रकाश से अंधेरे का आभास हो रहा था। चुरियाँ गाँव के महबूब मिस्त्री। मैं उन्हें देखकर मुस्कराया और आँखों को सवा पल ज्यादा दबाकर नमस्कार किया। वे अपनी बेटी के साथ बेलथरा रोड जा रहे थे। रेलगाड़ी की देर से परेशान थे। अब गाड़ी इतनी लेट कर देना चाहते थे कि बेलथरा सुबह पहुँचे। वरना रात की अलग मुश्किलें होंगी।

सोचा कि शिकायत यहीं कर दूँ - छत चू रही है। शिकायत को आगे के लिए टाल दिया। महबूब मिस्त्री ने ही मेरा घर बनाया था। पिताजी के मित्र थे और आराम से काम करने में यकीन रखते थे। पास बैठी अपनी बेटी से कहा - 'ये ज्ञानेश भाई के बेटे हुए।' वैसे हम दोनों परिचित थे और उसका नाम नसीम था। पीले रंग की बीमार रौशनी में उस लड़की को देखना ऐसा था जैसे मैं बरसों बाद आईना देख रहा होऊँ। उसके चेहरे के भराव में मुझे अपना नालायकपन और चार दिन की दाढ़ी दिख रही थी। हम दोनों ने कभी एक दूसरे से बात नहीं की। स्कूल कालेज में साथ साथ पढ़े थे पर वहाँ एक दूसरे को उड़ती नजरों से देख लेते थे। जान लेते थे, हमारे पिता आपस में मित्र हैं; ये महबूब मिस्त्री की बेटी है, ये ज्ञानेश चचा का बेटा है। मेरे दिमाग के नक्शे में वे टिके जरूर थे पर बतौर खास ख्याल नहीं। देखे गए चेहरे की तरह, बस। पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है हमारी हल्की कोशिशों ने हमें शानदार मित्र बनाया होता। रात मुझ पर चढ़ रही थी और मैंने उनसे विदा लिया।

घंटे भर से खड़ी रेलगाड़ी हिलने डुलने का नाम ले रही थी और मैं सैर पर था। जान पहचान के तमाम चेहरे दिखते रहे। गार्ड के पास पहुँचा, वहाँ भीड़ थी। गार्ड उपदेश दे रहा था और वो, स्वयं, शिक्षा व्यवस्था का कोटा हुआ लग रहा था। बातों के दरमियान वो अपनी डिग्रियों का जिक्र कर रहा था। बार-बार। उसने बताया कि वो बी.ए. पास लोगों के नमस्कार स्वीकार करता है। डबल एम.ए. और पी.एच.डी. वालों से उसकी खूब छनती है। गार्ड की बातें मैं भी सुनने लगा। इस 'सुनने' के दौरान एक लहराता ख्याल नसीम का आया। हमने पिताओं की मित्रता का कुछ ज्यादा ही पास रखा था। लगा कि एक बार फिर उसे देखा जाए। यह ख्याल इतना वजनदार था कि मुझे पलटना पड़ा। मैंने चाल संयमित की और दिल को समझाया। दिल को सोचने के नए ख्याल दिये। फिर तेज तेज चलता हुआ वहाँ चला आया जहाँ से मैं चला था। सुमेर के पिता ने मंडली जमा रखी थी। मुझे देखते ही छूट पड़े, "क्या भाई निरहूऽऽ, बनारस पहुँचेंगे कि नाहीं? कुछ करो, मालिक।"

शायद मेरे उत्साह का स्टॉक खत्म हो रहा था या जाने क्या बात थी कि उनकी इस बात पर मैं उदास हो गया। मुझे लगा कि कल दिन में जो काम मैं इनकी खातिर करूँगा, उसकी कोई कीमत इनकी निगाह में नहीं है। हाँ, ये जो मेरे नाश्ते और खाने का इंतजाम करेंगे उसकी एवजी में चाहते हैं कि मैं गाड़ी चलवाऊँ। मुझे “निरहू” शब्द पर एतराज था। मुझे आखिरी बार नसीम याद आई। फिर रात मुझे खटकने लगी और दूसरी तरफ से एक रेलगाड़ी आती हुई दिखी थी।

यह पवन एक्सप्रेस थी। दरभंगा-मुम्बई, पवन एक्सप्रेस। शाहपुर जंक्शन पर इस गाड़ी का इंजन बदलता था। इंजन आगे से हटाकर पीछे लगाया जाता, इससे गाड़ी की समूची दिशा ही पलट जाती थी। हवादार खिड़कियों वाले बे-हवा हो जाते। इस तरह यह गाड़ी यहाँ पैतालिस मिनटों के लिए रुकती थी। इसे भी बनारस होकर जाना था, सो इंटरसिटी एक्सप्रेस में हलचल मची - कौन सी रेल पहले जाएगी? मैं अपनी यादों से लैस था और हम दोनों ने रेल बदल ली।

पवन का चालू डिब्बा था और भीड़ थी। ऊपर की सीट पर उठेंगे लोगों से पैर मोड़ने का आग्रह किया और हम दोनों बैठ गए। आमने सामने। ठीक नीचे आठ नौ का समूह था जिनके बीच एक स्त्री थी। साँवली और शानदार। वह स्त्री पूरे समूह को भोजन परोस रही थी। उस समूह में जो मुस्कराहट फैली थी वो दरअसल निर्दोष गुमान था, जो एक स्त्री के साथ होने से, बस, हो जाता है।

इस स्त्री के कमर की ढाल इतनी तेज थी कि इसका पुरुष उसे रोजाना प्यार करना होगा। मुझे उस जगह की याद आई जहाँ ये जा रहे थे। वहाँ प्यार करने की जगह कम होगी और समय तो बिल्कुल नहीं होगा। संभव है प्रेम करने के बाद इन्हें रोना पड़े। एक गजब की स्त्री के साथ प्रेम इस कदर हड़बड़ी में होगा जहाँ एक चौथाई शरीर और तीन चौथाई उसकी याद शामिल रहेगी।

इण्टरसिटी के यात्री जान चुके थे कि पहले पवन जाएगी। उस रेल से सवारियाँ इधर आने लगी थीं। कुछ लोग आए और नीचे बैठे समूह से जगह बनाने की गुजारिश करने लगे। इन लोगों ने इंकार किया। बताया कि यहाँ जगह नहीं है, कुछ साथी प्लेटफार्म पर हैं।

ऐसा कई बार हुआ।

ऐन उसी पल वहाँ एक अजनबी आया। उसने बेंच के किनारे बैठे लड़के के कंधे थपथपाए और इशारों से ही जगह बनाने को कहा। वह लड़का खाने में मशगूल और इस इशारे पर अचकचाया। तब उस स्त्री से सटे बैठे पुरुष ने बात संभाली - ‘भाई साहब हम लोग खाना खा रहे हैं और हमारे कुछ साथी नीचे टहल रहे हैं। हम दस लोग हैं और यहां जगह नहीं है।’

वो अजनबी, भाव से ही ताकत में चूर दिख रहा था। उसने विस्मय का अभिनय किया - ‘कहां से आ रहे हो तुम लोग? बिहार से?’ उस पुरुष ने जवाब दिया - ‘भाई साहब ये गाड़ी जहाँ से आ रही है वहीं से हम भी आ रहे हैं और वहां तक जायेंगे जहां तक यह गाड़ी जाएगी।’

बातचीत का ऐसा मुहाना बन गया कि आस पास के लोग इधर देखने लगे थे। अजनबी आदमी ने ईश्वरनुमा अंदाज में कहा - ‘इलाहाबाद तक चलना है, बैठने दो, वरना तुम्हें भी यहीं उतार लेंगे। समझ रहे हो न।’ दूसरे तमाम लोग जरूर समझ रहे थे। बहुतों ने उस अजनबी आदमी को अपने पास की जगह पर बुलाया। मैंने भी ऊपर की बेंच पर उसे बुलाया। उस स्त्री का पुरुष भी बात बढ़ाने में यकीन नहीं रखता होगा। बस पूरे सफर में पोजीशन मटियामेट न हो इस खातिर कह पड़ा - ‘जी साहब हम नहीं समझ रहे हैं। कोई दिक्कत?’ अजनबी आदमी उसे कुछ पल देखता रहा और ख्याल की चाल से बाहर निकल गया।

सफर के रगड़ों की तरह बात बीत गई। वह समूह फिर से खाने में मगन हो गया। जो साथी नीचे टहल रहे थे, शोर सुनकर ऊपर आ गए। वह सलोनी स्त्री भी भरसक छुपा कर खा रही थी। रेल का इंजन अभी तक बदला नहीं गया था। इंटरसिटी एक्सप्रेस वैसी ही खड़ी थी। चुप। सब अपने टूट चुके ख्यालों की लय पाने में जुटे थे कि वो लोग आए।

अजनबी आदमी ने आते ही कहा - “यही था।” उस पुरुष की ओर इशारा किया। अजनबी के साथ की भीड़ ने उस पुरुष को पीटना शुरू किया। उसके साथ के लोगों ने पहले मुकाबला किया पर क्षेत्रीय भीड़ इतनी बड़ी थी कि सब पीछे हटते गए। उसके साथियों ने कहना शुरू कर दिया - “हम नहीं हैं, हम उसके साथ नहीं हैं।” जो भी उस पुरुष को बचाने आता उसे भी बुरी तरह मारा जा रहा था। एक आदमी की बाँह खिड़की से बाहर खींचकर रखा था और कोई दूसरा उसे बेल्ट से पीट रहा था।

उस स्त्री का चेहरा मुझे अब भी याद है। वो अपने पुरुष से लिपटी पड़ी थी और स्टेशन के शोर में उसका विलाप, उसका बिलखना साफ पहचाना जा रहा था। जैसे उसी की हत्या हो रही हो। उसके साथ के लोग भीड़ के पैरों से लिपटे थे। मैंने, सुमेर के पिता ने और अन्य लोगों ने सारा जोर लगा दिया। हम ‘बाबू भईया’ करते रहे। एक को पीछे खींचते तो अगले चार पाँच उसे पीट आते। हम बचाने की सारी कोशिश के साथ इसकी भी कोशिश कर रहे थे कि हत्यारी भीड़ हमें भी विपक्ष का न मान ले। पर बचाने के सारे प्रयास हमने किये।

हमने अपनी सारी प्रार्थनाएं अपनी लोकभाषा में रखी जो कि उस अजनबी के साथियों की भी भाषा थी। रेल की बनावट से पीटने में परेशानी आ रही होगी या सामूहिक पिटाई का उन्मादी आनंद भीड़ नहीं ले पा रही होगी तभी, शायद, उस हत्यारी भीड़ ने न्याय किया, “साले को खींचकर प्लेटफार्म पर निकालो।” हम जानते थे कि खुले में लाते ही उसे मार दिया जाएगा। हम, जो बचाने वाले थे, उनकी भी जमात ठीक थी और हमने सारी कोशिश कर डाली। हमारा एकमात्र उद्देश्य था वो आदमी प्लेटफार्म पर न उतरने पाए। मुझे अफसोस है कि मैं हत्यारों के पैर भी पड़ा। हमारा तरीका ही गलत था, हमारे साधन कमजोर थे और उसे बाहर खींच लाया गया। समूची पृथ्वी पर नितांत अकेली वह स्त्री भी घिसटती चली आई थी। उस स्त्री ने एक पल को भी यह ख्याल नहीं छोड़ा होगा कि उसका पुरुष मार दिया जाएगा। लोग उस पुरुष पर कूद रहे थे और वह आखिरी चीख उस स्त्री की ही थी जो हमारे कलेजे में फँस गई। शव से चिपटी स्त्री ने अनपे बाल नोच डाले थे और मर्म तक भेदने वाली एक पुकार थी - “हमर मनई होऽऽ।”

हम इतने जड़ हो चुके थे कि उस स्त्री की मदद करते हुए भी सांत्वना का एक शब्द नहीं कह पाए थे। आखिरी दम तक के विलाप के बाद वह स्त्री बेसुध हो गई थी। यह मेरी आँखों के सामने हुई पहली हत्या थी। जगह के लिए। महज बैठने की जगह के लिए। मैं इतना ही कर सका था कि अपनी रेल बदल दी और फिर बनारस जाने का इरादा भी छोड़ दिया था।

ये बातें रह रह कर याद आती हैं। कभी कभी तो दिनों बाद। उस दिन मैं खुद को अकेला पाता हूँ। उस स्त्री की तरह।

मुझे बदल देने वाली इस घटना के पन्द्रह-सत्रह दिन बाद की बात है - मैं रमाकांत चौधरी के साथ गाय-गोरू खरीदने बेचने का काम सीख रहा था। वो मुझे दाँत गिनने, खुर पहचानने से लेकर थन की छीमियाँ देखना सिखा रहे थे। ये भी बताया कि कैसे बिकवैये और ग्राहक बिचौलिये से अलग अलग बात करते हैं। आश्चर्य की बात थी कि खरीदने, बेचने वाले दोनों पक्ष आमने सामने मौजूद होते हैं, उनमें हर तरह

की बात होती है पर लेन-देन की सारी बात बिचौलिए से ही होगी।

उस दिन मैं इस सिलसिले में मुरैना गाँव गया हुआ था। एक जर्सी गाय की देख-रेख चल रही थी। बात बारह हजार पर टूटी थी। थोड़ी दूर पर ही हमारे इलाके का बैंक है। हुआ कि लेन-देन बैंक पर ही हो। अपने इलाके का बैंक भी एक तमाशा है। दस-बारह हजार का चेक भँजाना हो तो खेल देखिए! मैंनेजर साईकिल से शाहपुर जंक्शन जायेंगे और वहाँ की शाखा से पैसे लेकर डोलते हुए लौटेंगे। शांत बैंक है जबकि तीन-चार सौ रुपये निकालने वालों की भीड़ लगी रहती है। सुनने सुनाने को यह भी है कि बैंक बहुत फायदे में नहीं है।

बैंक के बाहर ही हम किसी चर्चा में गुम थे। हमें अंदाजा था कि मैंनेजर कब लौटेंगे? इसलिए कोई हड़बड़ी नहीं थी। उसी पल दो नौजवान वहाँ से गुजरे और किसी तीसरे को संबोधित किया - 'का 5 हो मनई?' यह सुनकर मेरा दिमाग जल गया। यह एक इत्तेफाक था और ऐसा इत्तेफाक जिसे बताना भी प्रायोजित लगे। पर मैं जान गया कि यह 'मनई' शब्द उस रात की चीख से उठा लिया गया है। बिना संदर्भ जाने। बाद में भी एक दो बार यह मुहावरेदार वाक्य सुनने को मिला पर उस दिन मेरे लिए यह सुनना अपने अपराध को याद दिलाने जैसा था।

मैं दूसरे गाँव में था पर खुद को रोक नहीं पाया। उनसे मिला। पूछा - कैसे जानते हो, बाबू, मनई को? दरअसल आपस में पूछताछ की ये सारी प्रक्रिया हमारे लोक व्यवहार से अलग थी। इतनी अलग कि इस जरूरी प्रक्रिया से गुजरते हुए शर्म आए। पर मैं लगा रहा। उन दोनों ने अपने ही गाँव के एक आदमी का नाम बताया। मैं उनसे मिलने गया। रमाकांत चाचा ने मेरी कार्रवाई पर अपनी विशेष राय दी : दिमाग से पैदल है।

उस आदमी ने मुझे देखते ही पहचान लिया। पहले वो बेहद उत्तेजित हुआ। वहाँ मौजूद लोगों को बार बार बता रहा था : 'ये बचाने वालों में थे।' यानी वो घटना उस गाँव की हवा में घुल चुकी थी। एक दूसरे को देखकर हमें पहला ख्याल यही आया कि हम एक हत्या में शामिल थे। पर धीरे धीरे हम बातें करते रहे। अपनी चर्चा उस रात की बात तक ले आते और फिर किसी और दिशा में घूम जाते। मेरे सवाल कुछ दूसरे थे - समाज और विज्ञान के बदलावों से महरूम हमने सारे परिवर्तन अपनी भाषा में कर डाले हैं। कोई आपके तेज तर्रार व्यक्तित्व पर एक शब्द कहकर पानी फेर सकता है - 'का हो मोहन।' मोहन एक नाम भर नहीं रहा, शरीर की गोपन क्रियाओं का एक रूपक शब्द है। नालायकों और बेगारों के लिए एक शब्द का मुहावरा है - निरहू। यही लिलकरन, शिताबी और खप्चार जैसे नामों के साथ हुआ। जाने ये लोग कौन थे। हम लगे थे कि मनई नाम पर कोई बेचारा मुहावरा न बनने पाए। एक हत्या जिसमें हम भी शामिल थे, उसका जश्न न होने पाए।

फसल और प्रेम की तरह मनई ने भी अपना समय लिया। लखनऊ की बात है। फौज की भर्ती थी। उत्साही लड़कों ने मुझे भी शामिल कर लिया था जबकि मेरी उम्र ज्यादा थी। इन्हें लगता था कि मैं रिश्वत की बारीकियाँ जानता हूँ और मुझे इस पर आश्चर्य था। मैं ऐसे अभय लोगों के बीच था जो मुझ पर भरोसा करते थे जबकि मैं हर कहीं असफल था। मेरे निर्णय मुझे ही समझ में नहीं आते पर मेरे परिचित उसकी तारीफ करते थे।

मेरे गाँव से नौ नौजवान थे, जो भर्ती में जा रहे थे। जंक्शन पर आते आते दूसरे गाँव से पचासों आ गए थे। मुझे अभी अभी बीता अपना समय याद आया। मैंने परीक्षाओं के बहाने भारत भ्रमण कर डाला था। धन्यवाद भारत के राजे रजवाड़े और आपकी परीक्षाएं। जंक्शन पर मुझे मनई बेतरह याद आए। लौट जाने

का ख्याल भी आया। मनई के साथ की स्त्री भी अपनी खूबसूरती में नहीं याद आई, मेरे सामने उनका बेसुध चेहरा था। इस बार गाड़ियाँ समय से चल रही थीं और रास्ते में मैंने खुद को थामकर रंगरूटों को मनई का सारा किस्सा सुनाया। पहली बार ये पूरा किस्सा मैंने अपने आपको भी सुनाया और किसी तीसरे की तरह अपनी ही गलतियाँ देखता रहा।

हम सुबह लखनऊ पहुँचे। प्लेटफार्म पर ही हमें रुकना था। वहाँ कई ऐसे चेहरे टकराए जिनसे रास्ते में भेंट हो चुकी थी। गाँव के लड़कों में से तीन चार ने मेरे साथ डट कर नाश्ता किया। बाकी बच्चों ने सिर्फ पानी पिया। सुमेर भी था, जिसने नाश्ते से इंकार कर दिया। ये अभी से बेचैन हो रहे थे। इन्हें बहुत दौड़ना था। बहुत ऊँची कूद लगानी थी। ये सारे दृश्य इनके मन में रचे जा रहे थे। इनकी आवाज से इनकी बेचैनियों का पता चल रहा था।

जब हम भर्तियों वाली जगह पर पहुँचे तब ग्यारह बज चुके थे। मन को थका देने वाली धूप थी। वहाँ पहुँचकर हमें एक निराली बात पता चली— कुछ जिलों को चिन्हित किया गया है, वहाँ के लड़कों की भर्ती अगले दिन होगी। इन जिलों पर आरोप थे और यहाँ के लड़कों की भर्ती कड़े अनुशासन में होनी थी। हमारे जिले पर तीन अन्य जिलों के साथ रिश्वत की सीधी पेशकश का आरोप था। कुछ जिलों पर धौंस जमाने का आरोप था।

ये बात इतनी अचानक पता चली कि पहले तो हमने कुछ समय अपने को यह विश्वास दिलाने में खर्च किया, 'हमारा एक नाम है और हमारा भी एक देश है।' यह हमारे स्वाभिमान पर ऐसा हमला था कि हम बेसाखा हँस पड़े थे। हमारे बारे में अच्छे लोगों के ये ख्याल थे। मैं अभ्यर्थी नहीं था इसलिए मुझे बाहर ही रुकना पड़ा। इस तरह जो सामूहिक शर्म हो सकती थी उसे मैं अकेला झेलता रहा। कायदे से, इन जिलों के अभ्यर्थियों को भी वहाँ नहीं होना था पर यह उनके जीवन का सवाल था। आज ही भर्ती पूरी हो जाए तो 'कल' औपचारिकता रह जाएगी।

मैं, जगह से थोड़ी दूर, आम के पड़े के नीचे और लू के बीच अपने साथियों का सामान अगोर रहा था। अकेला होते ही मेरी पहचान छुप गई और आते जाते लोग मेरी तरफ सामान्य निगाह डाल रहे थे। वो बस मैं था जो अपने जिले और उस पर लगाए लॉइन को जानता था। घंटों अपनी शर्म और क्रोध में डूबता उतराता, रह रह कर हँस भी लेता था। फौजी अफसरों का तरीका अनोखा था। मैंने जोड़ा घटाया और पाया कि भारत में हजार जिले हों तब अलग अलग हजार आरोप भी गढ़ने होंगे। एक आरोप अधिकारी नियुक्त किया जाएगा। मैं चाहूँगा कि आरोप मंत्रालय भी बने। मुश्किल तब आयेगी जब आरोप मंत्री अपने जिले के लिए आरोप तय करेंगे।

मैं उस मंत्री की परेशानियों से उलझा था कि नारों के शोर से जागा। शोर के साथ भारी भगदड़ मची थी। ऐसी कि मैं सामान छोड़ भाग पड़ा। उड़ती धूल ने भगदड़ में भी हमें छुपा लिया था। सारी बातें सुमेर ने मुझे दिनों बाद बतायी थीं— सामूहिक शर्म ने उन्हें कुछ पलों के लिए अवाक कर दिया था। जब चेते तब खुद को हजारों की भीड़ में पाया। माँग थी— सबकी भर्ती साथ हो।

इन्हें हर दरवाजे से बाहर रखा जा रहा था और सौ बात की एक : कोई नहीं था जो इनकी सुनता। जैसे जैसे भर्ती आगे बढ़ रही थी, ये हजार लड़के समझ नहीं पा रहे थे कि इन्हें क्या करना चाहिए? इनके उछाले गए नारे भी कमजोर निकल रहे थे। किसी दखल अंदाजी के लिए नहीं, बस, अपनी मौजूदगी दर्ज कराने के लिए इन लोगों ने भरसक ऊँचाईयें छेक रखी थी। कुछ पानी टंकियों पर चढ़े थे, कुछ बाड़ से अटके थे पर बहुत सारे लड़कों ने सैप्टिक टैंक की आसान ऊँचाईयाँ पकड़ रखी थी।

तात्कालिक असफलता का अपना अचूक हास्य होता है। जब इस भीड़ के नारे फिस्स होते तब ये लोग ठहाके से काम चला लेते थे। भारत माता की जय जैसे नारे, दो से तीन बार भी नहीं लहर सके। हर तरह के नारों की असफलता से सुमेर और साथी भी असर में आए। फिर एक तीर की तरह सुमेर और साथियों ने एक नारा उठाला - 'मनई बाबा की जय।' यह सिर्फ अपने समूह के लिए उछाला गया नारा था। अपनों को पहचानने के लिए। पर आतातायी गर्मी और नए नारों का निशाना ऐसा अचूक निकला कि समूची भीड़ को नई साँस मिल गई।

इस नारे से हुआ शोर ऐसा तीखा और तेज था कि भीड़ के लोग स्वयं को ही नहीं संभाल पा रहे थे। जितने लोग रह गए थे, ऊँचाईयों पर जगह ढूढ़ने लगे। सुमेर और उसके साथी नारे में पूरी तरह शामिल थे पर यह नहीं समझ पा रहे थे कि इस नारे में ऐसा क्या है जिससे समूची भीड़ फनफना गई?

नारा ही था जिसके ताप ने सैकड़ों-सैकड़ों लड़कों को ऊँचे चौड़े सैप्टिक टैंक पर खींच लिया गया था। फौजी नियंताओं से बैर मौल ले लिया गया होता अगर शोर ने सैप्टिक टैंक को बख्खा दिया होता। सैकड़ों की भीड़ को वो टैंक संभाल नहीं पाया और टूट गया। नारे आसमान में टँगे रहे। उनक शोर बढ़ता गया और भगदड़ मच गई। वो टैंक भीतर भी तरह टूटा था, जिससे लड़कों को भागने का मौका नहीं मिला। और तो और, जीवन बचाने की कोशिश में जो जिसे पकड़ सका, उसे भी ले डूबा।

मृत्यु बुरी होती है। नई उम्र के रंगरूटों की मृत्यु के पक्ष में, जिन्होंने दुनिया को महसूस करना अभी अभी शुरू किया हो, कोई एक शब्द नहीं कहा जा सकता। पर उससे भी बुरा था - दुनिया के सबसे गंदे दलदल में डूबकर मरना। बचे हुए सब भागते रहे। उनमें मैं भी था। कितनों का सामान मुझसे वहीं छूट गया। बाकी बचे पाँच लोगों से मेरी मुलाकात शाहपुर जंक्शन पर ही हो पाई थी जबकि हम एक ही रेल पर सवार थे।

जंक्शन से गाँव तक सुमेर मेरे साथ रहा। कोई बात नहीं हो सकी। साथियों की अनुपस्थिति स्वीकार कर लेने के बाद अनहोनी उत्कंठाओं से हम उबर चुके थे। ये ख्याल भी हमसे छूट गया था कि वो चारों अगली रेल से आ सकते हैं। अफसोस कि कोई नारा उन चार लड़कों को बचा नहीं पाया। लखनऊ के अखबारों ने मनई बाबा के नारों की खबर लगाई थी। उनमें अविश्वास यह था कि टूटने की दूसरी वजहें रही होगी वरना नारे से क्या भला टंकी टूट जायेगी।

ये मैं जानता हूँ और सिर्फ मैं उन चार लड़कों के माता पिता का सामना कैसे करता हूँ। लगभग रोज। हमारे दायरे इतने गोल और छोटे हैं कि जिसके भी साथ रहे, उसकी आदत पड़ जाती है। अब मैं आसपास के गाँवों में जाने से डरता हूँ जबकि सरकारी आकड़ें हमारे साथ हैं। वहाँ दर्ज संख्यायें न्यूनतम हैं। इतनी कम कि हमें कोई गम न हो।

इन नौजवानों की गमी साल अंत तक चली। पर जब हम उबरे तो ये नारा हमने जगत् व्यवहार में उतार डाला। मौके बे मौके हम पूछते - 'नारा लगाएँ क्या?' और हँस पड़ते। इससे उबरने की वजह भी थी - हमारे पास धड़कता हुआ जीवन था। शानदार। बस हमें पता नहीं था कि इस धड़कते जीवन का हम क्या करते? उसे किस ऊँचाईयों तक ले जाते या फिर कौन से चूल्हे-भाड़ में अपना प्यारा जीवन झोंक आते? हम किसी तोप लक्ष्य के सामने नहीं थे। क्षुद्रताओं में इस तरह उलझे थे कि महान जीवन की खूबसूरत बातें हमसे छूटती जा रही थीं और ये सब हमारे जानते हो रहा था। आश्चर्य तब हुआ जब बड़े लोगों को इन छोटी छोटी खूबसूरत बातों से महरूम होते पाया। मैं पुलिस के एक बड़े अधिकारी की बात कर रहा हूँ।

लखनऊ के आचरण के उबरे हुए हमें साल भर हो रहा था। हमारे पास भी खबरें रहा करती थीं पर

अगर खुद बैंक मैनेजर ने न बताया होता तो हमें पता भी नहीं चलता कि बैंक यहाँ से हटाया जा रहा है। मैनेजर साहब ने ये बात ऐसे बताई जैसे वो कोई हमारा ही अपराध बता रहे हों। वो बहुत अच्छे थे, तमाम उपाय बताये – ‘यहाँ के लोगों को बैंक की जरूरत ही कितनी थी? – कोई भी एक आदमी शाहपुर जाएगा और सबके हिस्से का पैसा जमा कर आएगा – कितनी कम तो हमारी जरूरतें थी – शायद ही कोई हजार रुपये बैंक से निकालता हो।’

मुझे कोई मुश्किल नहीं थी। मेरे पास खाता ही नहीं था। फिर भी जब यहाँ से बैंक हटा दिया जाता तब हम अचानक पाते कि हमारे इलाके में एक भी बैंक नहीं है। यह देखकर हमें आश्चर्य होता कि बैंक की इमारत में जिद्दी बकरियाँ चर रही हैं। हमें शाहपुर जंक्शन की सुहानी यात्रा रोज करनी पड़ती। मैं उस इमारत में जाकर वो जगहें देखता, जहाँ बैंक ड्राफ्ट फार्म रखा होता था।

ये कोई बड़ी बात नहीं थी। बैंक हटाया जा रहा है तो हट जाए। पर लोग जरूरतों के लिए कम, सम्मान के लिए ज्यादा तमाशा कर गए। ये खुद को ऐसी ऊँची चीज समझते थे जैसे इनकी जानकारी के बिना हुआ काम धोखा है। लफड़े पर उतर आए।

जिस दिन पहली बार बैंक का घेराव हुआ, उस दिन सहलाती हुई धूप उगी थी। घेराव भी क्या, एक अलहदा ख्याल था। बिना तंबू कनात के छोटे से मंच पर लोग जमे थे। माँग ऐसी थी कि किसी ने कभी सुनी ही न हो : चालिस पचास गाँवों के इकलौते बैंक को नहीं हटाया जाए।

घेराव पर लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी जिससे बैंक को नुकसान हो रहा था। ये मैनेजर के ऐसे सगे थे कि इनके चायपानी का खर्च बैंक के खर्चों से जुड़ जाता था। दस दिनों तक घेराव किस्सों के जरिए कटता रहा। बैंक के अपने कार्यक्रम थे और सुमेर के पिता थे कि दस दिनों से गोरखपुर से बनारस जाने का किस्सा सुना रहे थे। उनके किस्से सुनाने की अदा ऐसी निराली और पेंचदार थी कि सुनने वाले पीछे की सारी बातें भूल जाते थे। ग्यारहवें दिन जब शासन-पुलिस के लोग सुलह के लिए आए, तब तक सुमेर के पिता किस्सों में चलते हुए अभी बनारस पहुंच नहीं पाए थे।

ये सब ऐसे हुआ कि बैंक के ऊँचे ऊँचे अधिकारी स्वयं को अपने ही देश में अकेला पा रहे थे। लोगों की असभ्यता का उन्हें दुःख था। वे देख रहे थे कि लोकतंत्र में उन्हें निर्णय लेने का अधिकार नहीं रह गया था। उन्होंने यह कहते हुए दुःख जताया : “ये कैसे लोग हैं?”

बैंक के घेराव का अपना किरदार था। माहौल की तराश में एक बार फिर मनई बाबा के नारे उछाले गए। बनते-बनते बात ये बनी कि हो न हो नारा ही ऐसा है, जिससे भीड़ बढ़ती जा रही है। गाँव-गिराव के बातफरोशों के विलक्षण अंदाजे बयानों ने अखबार टीवी वालों की ऐसी मति मारी कि इन सबने समूची घटना का केन्द्र मनई बाबा से जुड़े नारों को मान लिया।

सारी बातों पर रोक लगा जाती पर शासन के ऐसे बुरे दिन आए थे कि वो बनते-बिगड़ते नारों का ध्यान रखे। जिले के आला अधिकारी लोग ऊपर से ऐसे चाँपे गए कि मारे डर के चौड़े हो गए। इस तरह ग्यारहवें दिन घेराव की जगह पर पहुँचे जहाँ उनका मजाकिया स्वागत किया गया। बैठने के लिए प्लास्टिक की कुर्सियाँ मिली।

देर तक नर्म नर्म चलती रही। एक अधिकारी निर्णय लेने और लोकतंत्र की बात बता रहे थे। उनके भाषण में एक सौ बीस दफा लोकतंत्र और पैंसठ बार ‘निर्णय लेने की आजादी’ जैसे शब्द आए। गाँव गिराव के लोग ऐसे तर्कों से लैस नहीं थे और इन खास शब्दों के भीषण दुहराव से वो सब दोहरे हो गए। जब

अधिकारी जी का वक्तव्य समाप्त हुआ तो पिण्डी गांव के एकअधेड़ ने आगे आकर उन्हें धन्यवाद दिया। इस बतबहक ने अनूठा जवाब दिया : “साहब, आपकी लोकतंत्र वाली बात में दम है, हम तो इसे भूल ही गए थे।”

दूसरे अधिकारी ने जब समझाईश का मोर्चा संभाला तब हमारे मण्डला आयुक्त भी मौके तक पहुँच गए थे। इस अधिकारी ने बहुत समझाया : - शाहपुर कितनी दूर है - दो कोस - जो लेन देन यहाँ करते हैं, वहाँ भी कर सकते हैं -। ऐसे तर्कों पर गाँव वाले चुप हो जा रहे थे पर अपनी बातों पर अड़े थे : सब कुछ सही है पर ये बैंक यहीं रहेगा।

बातचीत के इस मुहाने पर एक दूसरे अधिकारी को संयम रखना था। दरअसल सबके लिए जो धूप सहलाती हुई थी, उसे चुभ रही थी। वो ताव खा गया और कह पड़ा : देहातियों के पास समय भी खूब होता है।

इस अनजानी बात पर देहात के लोग भक् रह गए पर संभलते ही अपने अनूठेपन में अधिकारी की बात की खूब दाद दी : हमने समझा तुम अपनी ही बातें सुना रहे हो। इस तरह यह चोट पहुँचाने वाली बात हँसी बनकर रह गई। पर इस बात से माहौल बिगड़ गया।

एक दूसरे पक्ष को आड़े-तिरछे जवाब मिलने लगे और ऐन वक्त पर किसी ने वो नारा लगा दिया - मनई बाबा की जय। यह दुःखती रग थी। नारे लगने लगे। शोर जो उठा कि उठा ही रह गया। सुनने-सुनाने का समय जाता रहा और शासन के लोग डर गए। हल्की धमकियों से बातचीत पटरी पर आ रही थी कि पुलिस के बड़े अधिकारी ने सबको हँसा-हँसा के दुहरा कर दिया। वो बहुत गुस्से में थे और अपनी शान के बचाव में ‘मनई साले’ को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया : जो भी है यह मनई, कल तक हाजिर किया जाए।

इस पर जो हँसी मची की पूछो मत। मनई बाबा की गिरफ्तारी भी संभव थी, ये तो लोगों ने सोचा ही नहीं था। एक सिरे से सबने यही ख्याल किया : हो न हो, नए जमाने में और शहरों में मृतकों की यादों को गिरफ्तार करने की कोई तकनीक भी आ गई हो। यह राय इतनी आम बनी कि उस वक्त लोगों ने मनई बाबा के न होने की बात ही नहीं बताई। पर जब बताना चाहा तब तक देर हो चुकी थी।

लोग फिर फिर नारे लगाते रहे। धूप साथ थी जो चढ़ रही थी। बैंक के बरामदे से पीपल के पेड़ तक लोग ही लोग थे जो रह रह कर परेशान हो ले रहे थे। बातचीत का क्रम शुरू होता है और टूट जाता। अफसरों की समझ और भाषा इतनी परायी थी कि लोगों की हँसी उन्हें अपना मजाक उड़ाने जैसी लग रही थी। इसका यकीन करना मुश्किल है कि लड़ाई अब बैंक और मनई बाबा से अधिक, भाषा की हो गई थी। देहात के लोगों की अचूक बोलियों से अफसरान् भीतर तक बिंध जाते थे। जितना ही वो अपमानित महसूस करते, उनके प्रवचन फैलते जाते थे।

जैसे सबको पता हो कि नतीजा शिफर ही होगा। गाँव के लोग बैंक की जगह बदलने पर कत्तई तैयार नहीं थे और शासन तो वैसे भी श्रेष्ठ लोगों का काम है, वो भला कैसे पीछे हट सकते थे। ऐसे में एक बार फिर उसी आला पुलिस अधिकारी ने मोर्चा संभाला, जिसने मनई की गिरफ्तारी के आदेश दिए : बैंक से आपकी जरूरतें शाहपुर में पूरी हो जायेंगी। हमें कड़े निर्णयों के लिए मजबूर न करें। कम से कम लोकतंत्र में अगले को निर्णय लेने का तो मौका दें। बैंक के स्थान परिवर्तन में मदद करें, इससे देश का विकास होगा।

लोगों ने हर बार की तरह सुना। हजारों की भीड़ से एक दनदनाता हुआ जवाब आया। यह सुमेर था,

जो अब भी हमारी यादों में तंदुरूस्त है। सुनने वालों ने इसे सुमेर का बचपना ही माना। उसका जवाब था : साहब, आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि हम भी इसी देश में रहने वाले हैं।

सब चुप! साहब जो इतनी शानदार हिंदी बोल रहे थे, उनका मिजाज ढीला हो गया। उन्हें जवाब देने की तैयारी करनी पड़ी। वाजिब है कि कोई इस पर विश्वास न करें – साहब के चेहरे पर एक खास भाव के न आने से भदगड़ मच गई।

सुमेर के कटीले जवाब का जवाब साहब भी व्यंग्य में ही देना चाहते थे। व्यंग्य की समूची तैयारी से साहब ने एक वाक्य उछाला था : अच्छा, तो तुम भी इसी देश के रहने वाले हो?

यह वाकई शानदार व्यंग्य बना होता बशर्ते साहब के चेहरे पर गर्वीली और उपेक्षा से भरपूर मुस्कराहट आ गई होती। पर ऐन वक्त, उनका चेहरा उन्हें ही धोखा दे गया और हजार लोगों के सामने पकड़े गए। वे चाहकर भी नहीं मुस्करा पाए और उनका चेहरा तना रह गया, जिसे सबने देखा।

मुस्कराहट की गैर मौजूदगी से यह व्यंग्य भरी बात प्रश्न में बदल गई। सबने यही समझा – जैसे बड़े साहब सचमुच नहीं जानते थे कि सुमेर किस देश का रहने वाला है? किसी को जो बैंक की बात याद रह गई हो। भाषा की लड़ाई में पहली पर तात्कालिक पराजय बड़े साहब की हुई, ये वो भी जान गए थे।

उन्हें भी एहसास हो गया कि वो चूक गए हैं। चूक गए हैं और देहातियों के साथ शासन के तरफदार सैकड़ों लोगों की निगाह में उनकी चूक चढ़ गई है। सो उन्होंने दुबारा जोर मारा। दुबारा जोर मारा और फिर चूक गए। उनके इस वाक्य को प्रेम और वात्सल्य से भरपूर होना था पर वो धमकी भरा निकल गया : बालक, तुम्हारे जैसों को एक पल में बता दूँगा कि तुम किस देश के हो?

बड़े साहब को लगा उनका सर चकरा जाएगा। अपना ही चेहरा बेसंभाल निकल गया। गलती पर गलती। हजार गलती। देहातियों के सामने पराजय एक क्षण के लिए मान्य भी थी पर अपने लोगों से शर्म आ रही थी। हर तरह की भीड़ चुप थी। सब के सब बड़े साहब को देख रहे थे और यह देखना खुद बड़े साहब भी देख रहे थे। हर बात उल्टी चली जा रही थी और उन्हें लगा, सुमेर मुस्करा रहा है। साहब उसे देखते रहे और कुछ पल थम कर उन्होंने जो किया उसमें सफल रहे।

साहब ने एक सड़ी हुई गाली दी और उसकी प्रतिक्रिया उन्हें न जाने कैसी लगी कि एक थप्पड़ चला दिया। हजार बारह सौ लोगों के उलझे सवाल को सुलझाने का यह तरीका अचूक और पुराना था। वैसे, कायदे से सुमेरको बदले में थप्पड़ नहीं मारना था।

फिर जो भगदड़ मची उसका अहवाल वही सुना सकता है जो वहाँ नहीं था। वजह कि वैसी वीभत्स घटना कल्पना की कूवत के बाहर है। बाजरे की फसलें जो बिते भर उग पाई थी, रौंद डाली गई। अगर अरहर के खेत न मिले होते तो हमारा भी बचना मुश्किल ही था। अरहर की ऊंची और परिचित फसल ने हमें गति बढ़ाने और लंबी सांस लेने का मौका दिया।

अगर गांव वालों के कोई गुनाह है तो उसे ईश्वर माफ कर सकते हैं या सुमेर के पिता। घेराव को तुरंत प्रभाव से खत्म कर दिया गया। बैंक के स्थान परिवर्तन में उतना ही समय लगा जितने में मार्च के महीने में कोई पुरुष अपनी प्रेमिका को याद करता है। हजार-बारह सौ की भगदड़ में जो कुछ नुकसान हुआ वो इतना कम था कि प्रशासन की तारीफ होनी चाहिए, जबकि आकड़ों से हमारी कोई लड़ाई नहीं है। और तो और, बड़े साहब ने सुमेर को बचाने की भी कोशिश की, इसलिए उसे गिरफ्त में ले लिया था। पर कहते हैं न, होनी तो फिर होनी है। उन बेचारों की गिरफ्त से खुद को छुड़ाकर सुमेर ने खुद को ही भगदड़ में डाल लिया था।

सुमेर के पिता ने भी हद कर दिया। सबने कहा और बार बार कहा – बेटे की मिट्टी ले आओ। जिस दिन आखिरी बार सरकारी हरकारा आया था, दिन डूब रहा था। वो आदमी खेत के पास खड़ा रहा। गांव के लोग भी थे। खेत की मिट्टी नर्म कर चुके सुमेर के पिता आठ हाथ लम्बी क्यारियाँ भी निकाल चुके थे। आलू की आँख ऊपर रखकर रोपाई भी कर ली और जब क्यारियों पर मिट्टी चढ़ाने लगे तो पूछिए मत, क्या शानदार गोलाई उभर कर आई थी। सरकारी हरकारे को पास बुलाया। नई और अंजानी दिशा की ओर सर किया, पूछने लगा : सुमेर के नहीं होने का यकीन दिलाओ।

मैं तहेदिल से आपका शुक्रगुजार हूँ कि आपने इसे किसा समझ कर ही सही, पर सुना। हम बहुत सारी राजनीतिक पार्टियों के भी वैसे ही शुक्रगुजार हैं। वे भी आपकी तरह ही धैर्य से ये सब देखते रहे और देशहित की लड़ाई में शामिल होने का मौका दृढ़ते रहे। जो उन्हें मनई बाबा की गिरफ्तारी के बहाने मिल गया। इन पार्टियों के शोर ने हमें गर्मी से बाहर निकाला। वरना हमने तो जैसे अपने किरदार जला डाले थे। चालीस पचास गाँवों ने मान लिया था कि रोजमर्रा और सूर्य की आवाजाही के सारे तर्क टूट गए हैं। ऐसे हाल में हमें कटे अंगूठे के निशान वाली पार्टी ने चौंकाया।

इस पार्टी के जिलाध्यक्ष इतने ऊँचे पद से रिटायर थे कि उनकी समझ पर किसी को शक नहीं था। मनई बाबा की गिरफ्तारी के विरोध में वो आमरण अनशन पर बैठ गये। बाकी की पार्टियाँ हदस गईं। पर इस होशियार जिलाध्यक्ष ने मौका दे दिया। ये साहब, अनशन पर बैठे जरूर, पर एक लाश ले कर बैठे। अखबारी मौसम उनके साथ जा रहा था कि बाकी सभी पार्टियों ने एक साथ जीवित 'मनई' को खड़ा कर दिया। पूरा मामला ऐसे घूम गया जैसे पृथ्वी रोज घूमती है। सामान्य।

इन दलों ने गजब तरीके अपनाए। अपने अपने जोड़ घटाव से इनके मनई तय किए गए थे। धुआंधार नारे लिखे गए। इनके मनई पार्टी आफिस से अपनी यात्रा शुरू करते। वहाँ से कोई जीप पर, या पैदल ही पैदल निकलते, लोगों के आर्शिवाद लेते हुए थाने तक की यात्रा करते। वहाँ के पुलिस अधिकारी हँस कर इनका स्वागत करते और धूमधाम से गिरफ्तारी होती। इन नए नेताओं ने अपने नाम से 'मनई' जोड़ लिया।

पार्टियों से हम जगो जरूर पर हमारे मिलने जुलने का कोई शोर नहीं था। हम अलग अलग लोगों से मिलते और चुप हो जाते। वो व्यक्ति जान जाता कि हम चुप क्यों हैं? हमें लगने लगा था, मनई किसी गाँव का नाम है जिसे हमने ही बसाया था। कुछ दिनों के लिए हम इस गांव के ख्याल से दूर हुए और जब वापस आए तो हम अजनबी थे। हमारे ही गांव में हमें दूसरे दर्जे की मान्यता मिली। इसकी गलियाँ हमें धोखा दे जा रही थीं। और हमारा ऐतराज भी यही था।

हमारे ऐतराज पर भले लोगों का गुस्सा भी जायज था। कहाँ तो वे एक नायक जिंदा रह रहे थे और हम थे जो अपने मनई को बार बार मरा हुआ साबित कर रहे थे। मनई को मरा साबित करने के सारे तर्क गलत थे। पर हममें डर बैठ गया था कि मनई नाम के साथ कोई ओछा मुहावरा न बन जाए।

एक दिन, हम कई लोग थे जो, अपने ही बसाए इस गाँव की सड़क तक नहीं पहुँच पा रहे थे। रास्ते अबूझ हो चले थे और हम इस गली से निकल कर दूसरी गली में आ जाते। इस तरह इन चुप्पियों में ही हमने जाने कैसे मनई बाबा का चौरा बाँधने के ख्याल पाल लिए।

चौरा बाँधने का जो कायदा चल निकला है, उसमें गाँव के कुछ लोग एक गुणे पाँच डेग की जमीन पर कुदाल चलाते हैं। यह जमीन गूलर के पेड़ के नीचे होनी चाहिए। जिन गाँवों में गूलर नहीं रह गए हैं, वहाँ

कोई भी पेड़ चलता है। उस खास जमीन की मिट्टी को भुरभुरी करते हैं। घास अगर हुई तो हटाई जाती है। उस मुलायम मिट्टी में सवा पसेरी राख, उतना ही धान और पानी छींटते हैं। गूलर की पत्तियों को सिलकर इस जमीन का घेरा तैयार करते हैं।

अब मेरी बारी होती है। मैं मन में एक इच्छा रखता हूँ कि माहौल में तेजी रहे। लोग चौरे को घेरे बैठे रहते हैं और मैं, अभिशप्त दृष्टा और पीड़ित वाचक, पूरी कथा दुहराता हूँ। मेरा जानना मेरे खिलाफ चला गया है। वैसे मैं इस दुःख से सुखी हूँ वरना अपने ही बीच का कोई दूसरा होता जो मेरी जगह होता। जब कथा समाप्त होती है तब सभी जनें इस तर जमीन की मिट्टी घर ले जाते हैं।

कुछ गाँवों में चौरे को तराशे संगमरमर से बाँध दिया गया है। एक गाँव में बाकायदा मनई बाबा के स्थापना गीत भी गाए गये। मैंने उस गीत को लिखा और पाया कि मातृभाषा में लिखना कितना कठिन है।

मुझे ये सारी बातें चुभती हैं। मेरी रातों को इस किस्से ने डूँस लिया है और जब से शासन ने मेरे खिलाफ कार्रवाई की है, मैं पाता हूँ कि मेरी गति बढ़ गई है। मेरे गाँव गिराव के लोग इस कार्रवाई से नाराज हैं और मुझे मैडम के इश्क का अपराधी बता दिया है। हमारी चालें इतनी सीधी हैं कि दुनिया हैरान है। वैसे अगर मैं गिरफ्तार होकर नहीं जा रहा होता, तो भी मुझे कल अपने लोगों के साथ जंक्शन पर आना था। कल वे लोग कोई सटीक जगह देखने आयेंगे। ऐसी छोटी सी जगह जो आने जाने वाली रेलगाड़ियों से दूर से दिख जाए और याद की तरह, दूर तक दिखती चली जाए।

---

चन्दन पाण्डेय का संग्रह 2008 में आया। 'भूलना' कहानी भी चर्चित हुई और उसी नाम से संग्रह भी। चंदन बिलकुल नये मिजाज के कथाकार हैं। भारतीय ज्ञानपीठ का युवा लेखक पुरस्कार भी उन्हें मिला है। 26 साल के चंदन पांडे ने उर्दू की तालीम भी प्राप्त की है। कई भारतीय भाषाओं में उनकी कहानियाँ आ गई हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने उनकी 'भूलना' कहानी का मंचन भी किया है। अपना प्रारंभिक जीवन बनारस में बिताने के बाद वे रोजगार के सिलसिले में हैदराबाद में हैं। चंदन पाण्डेय की आगामी राह आसान नहीं है। प्यार करने वाली और झपट्टा मारने वाली ताकतों के बीच वे रच रहे हैं और लेखकीय समझदारी के साथ आगे बढ़ रहे हैं।